Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी शीराज़ा

जे. एण्ड के. अकादमी ऑफ़ आर्ट कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू

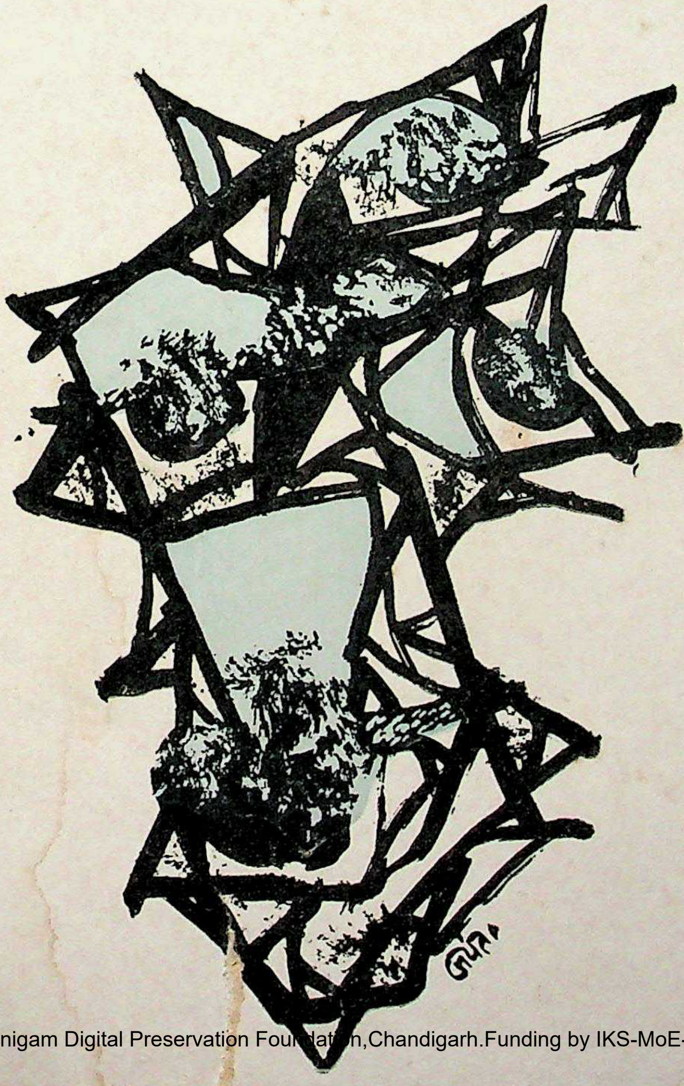

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc No. M452
Dated 16.12.2023

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

द्विमासिक शीराज़ा हिन्दी

वर्ष : २२ अगस्त-सितम्बर १९८६ अंक : ३

८१

□

पचहत्तरवीं वर्ष गांठ पर विशेष

आधुनिकता का समावेशी चरित्र : शमशेर का काव्य

□ धनंजय वर्मा

समकालीन काव्य चर्चा में 'अज्ञेय' और मुक्तिबोध के बाद सबसे अधिक चर्चित और विवादास्पद नाम शमशेर का है। उनके काव्य को लेकर भी लगभग उसी तरह ध्रुवीय प्रतिक्रियायें व्यक्त की जाती रही हैं। मुक्तिबोध की तरह उन्हें भी अपने-अपने शिविर में शामिल करने की होड़ लगी रही है। उनका काव्य भी इस बात का सबूत है कि समर्थ काव्य-रचना आलोचना के सांचों और आलोचकों के अपने-अपने प्रतिमानों का लगभग तिरस्कार करती हुई अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करती है और परिदृश्य पर अपना रचनात्मक असर छोड़ती है। आलोचना का एक सांचा तो है शुद्ध कविता और कलावाद का जिसमें शमशेर की कविता फिट की जाती रही है लेकिन जिसे वह स्वीकार नहीं करती, उसे अतिक्रमित कर जाती है। और दूसरा सांचा है प्रगतिवादी जिसे उनकी कविता स्वीकार तो करती है लेकिन उसी में अंट नहीं पाती, उसको भी वह संतरित कर जाती है। दरअसल शमशेर ने काव्य के इतने विविध रूपों और प्रकारों में सम्पूर्ण भीतरी अनिवार्यता के साथ सार्थक काव्य-रचना की है कि वह किसी एक ही सांचे और प्रतिमान या बाड़े में घेरे नहीं जा सकते।

किसी भी रचनाकार के अन्तर्बाह्य संसार के साक्षात्कार की दिशा में पहली ज़रूरी पड़ताल उसकी रचनादृष्टि के विश्लेषण से शुरू होनी चाहिए कि हम अपनी-अपनी निगाहों और दृष्टि के चश्मे से यदि इस संसार को देखेंगे तो मुमकिन है कि उसका समग्र साक्षात्कार न कर सकें। शमशेर के प्रसंग में उनकी रचना-दृष्टि की समझ तो और भी ज़रूरी इसलिए भी है कि उनकी रचना चेष्टा में संश्लेष के जिन बिन्दुओं की बेचैन खोज है वह ऊपरी नज़र में परस्पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विरोधी-से लगते हैं। उन्हें एक ही दिशा या कोण से देखिए तो वे खासे कलावादी बल्कि शुद्ध कवितावादी भी नजर आ सकते हैं। दूसरी दिशा और कोण से उतने ही सामाजिक दृष्टि सम्पन्न और प्रतिबद्ध कलाकार भी हैं। दरअसल उनका रचनावृत्त एक ऐसे विकासशील रचना-वलय (वाइडुनिंग जायर) की मानिन्द है जिसके समग्रबोध के लिए वृत्त की ग्रहकक्षा के साथ-साथ उसके परिभ्रमण का विकासशील साक्षात्कार भी जरूरी है।

दूसरा सप्तक में उनके वक्तव्य के इस हिस्से पर गौर करें: **"अपनी कलाचेतना को जगाना और उसकी मदद से जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य को अपनी कला में सजीव रूप देते जाना, इसी को साधना समझता हूं और इसी में कलाकार का संघर्ष छिपा देखता हूं।"**···कला चेतना को जगाने का मकसद यहां जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य को सजीव रूप देना है।

सच्चाई और सौन्दर्य यहां एक-दूसरे के विरोध में लगते जरूर हैं लेकिन कवि उन्हें एक-दूसरे का विकल्प नहीं बना रहा है, बल्कि एक साथ ही दोनों का संश्लेष पाना चाहता है। यह साधना न तो उतनी आसान और सपाट है जितनी कि सपाट यथार्थवादी समझते हैं और न उतनी रहस्यवादी और अलौकिक है जितनी कि सौन्दर्य शास्त्रवादी या कलावादी मानते हैं। बेशक शमशेर का जोर अभिव्यक्ति पर है। 'कुछ और कविताएं' की भूमिका में वह कहते हैं: **"मैं जितना महत्त्व ऐसी अभिव्यक्ति को देता हूं—कवि के जीने मात्र के लिए उसे जितना महत्त्वपूर्ण मानता हूं— उतना उसके प्रकाशन को नहीं। कला के प्रकाशन को वास्तव में मैं महत्त्व नहीं देता। कला कैलेण्डर की चीज नहीं है। वह कलाकार की अपनी बहुत निजी चीज है।···वह अपने आप प्रकाशित होगी और कवि के लिए यह सदैव कहीं न कहीं प्रकाशित है।"**

इस वक्तव्य को आप आसानी से अभिव्यंजनावादी क्रोचे के सहजानुभूतिवादी अभिव्यंजनावाद के समानान्तर रख सकते हैं जहां काव्य-व्यापार को शब्दों में बांधना जरूरी नहीं है। यदि वह शब्दों का रूपाकार लेती है तो यह सचमुच कवि का हम पर एहसान है। सहजानुभूति का काव्यदर्शन सहोदर है अधिक से अधिक स्वच्छन्दतावाद के 'स्पान्टेनियस ओव्हर फ्लो' के मानिन्द अनुभूति जब शब्दों में छलक कर आ जाए। लेकिन एक चीज पर गौर करना यहां भी जरूरी है कि जिस कला को कलाकार शमशेर अपनी बहुत निजी चीज मान रहे हैं, अंतिम वाक्य में वह सदैव कहीं-न-कहीं प्रकाशित जरूर है। यह सदैव जितना कवि के लिए है उतना ही हम सबके लिए भी है। यानी उसकी यह जो बहुत निजी चीज है, वह अपना उद्भव पाती कहां है? इसे ध्यान में रखना बहुत जरूरी है कि वह आयी कहां से है? आगे यह बात बहुत काम आयेगी। अभी तो बात अभिव्यक्ति की चल रही है और इसी भूमिका में शमशेर कहते हैं: **अभिव्यक्ति अपनी ओर से सच्ची हो, यही मात्र मेरी कोशिश रही।** सवाल है—किसकी अभिव्यक्ति? जाहिर है सौन्दर्य की अनुभूति की और अकेले सौन्दर्य की अनुभूति की नहीं, बल्कि जीवन की सचाई की सहजानुभूति की भी। वह कहते भी हैं: **कविता की एक विधि वह है जिसमें कविता का फार्म ही कविता को कविता के भीतर खींच लेता है।**··· बेशक यह वाक्य उन्हें रूपवादी करार दे सकता है। गोपालकृष्ण कौल उन्हें फार्मलिस्ट कहते भी हैं। लेकिन यह सरलीकरण है। दरअसल वह ऐसे कलाकार हैं जो हर चीज 'टॉप लेवल' की चाहता रहा है। बड़ी सख्त कसौटी जिस पर वह दूसरों के साथ-साथ खुद को भी कसता रहा है।···कला के प्रति इस बेहद सजग और संवेदनशील दृष्टि पर कलावाद का आरोप करने के पहले उनकी इस बात पर भी गौर कर लिया जाय: **'दरअसल जो मेरे संस्कार हैं, जो मेरा अनुभव है, वे तो जड़ की तरह काम करेंगे ही और इन्हीं में से मेरी कविताएं फूटेंगी ला मुहाला···पर मैं अनकांशस पोधा**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तो नहीं हूं···**मैं एक सजग संवेदनशील बाहरी प्रभावों को ग्रहण करने के प्रति उन्मुख पौधा हूं।"** ···यानी वे है अन्तर्मुख कलावादी नहीं, बाहर के प्रभावों को ग्रहण करने वाले सजग संवेदनशील कलाकार हैं। इसीलिए अपने माध्यम के प्रति कलाकार का जो रुख है वही महत्त्वपूर्ण होता है। शमशेर अपने माध्यम पर पूरा अधिकार चाहते हैं। क्यों: **'ओ माध्यम, क्षमा करना, कि मैं तुम्हारे पार जाना चाहता रहा हूं**···।' इस पंक्ति में जितनी विनम्रता है, उतना ही गौरवशाली दर्प भी। वो अपने माध्यम को खुद से बड़ा तो मानते ही हैं लेकिन लगातार उसके पार भी जाना चाहते रहे हैं। भला समकालीन परिदृश्य में इतने विनम्र आत्मविश्वास से यह कहने वाला और कौन-सा कवि है: **'मैंने काव्य के इतने विविध रूप प्रकारों में, सम्पूर्ण भीतरी अरजेंसी के साथ सफल ढंग से काव्य-रचना की है कि मेरे ख्याल से मेरे समवयस्कों में से किसी ने न की होगी।'**···यह वाल्टव्हिटमैन के आत्मविश्वास से मिलता-जुलता दर्प है और इसके पीछे है रचना-प्रक्रिया का वह अन्तर्लोक जिसका कोना-कोना और स्तर-स्तर, शमशेर झांक ही नहीं आये हैं, जिस पर अपने अधिकार की छाप भी उन्होंने छोड़ी है।

शमशेर ने रचना-प्रक्रिया के प्रसंग में कहा है—इट इज़ लाइक वार्बलिंग आव अ वाइल्ड बर्ड, द मॉमेन्ट इट इज़ डिस्टर्ब्ड इट स्टाप्स एण्ड फ्लाईज़ अवे···। लेकिन इसके साथ ही उन्होंने उस अरबी कहावत का भी जिक्र किया है—यह कला जो है वह एक ऐसा जंगली घोड़ा है जिसको कि आपको काबू में लाना है और उससे काम लेना है···। दोनों बातें परस्पर विरोधी लग सकती हैं और लोगों ने जो फतवा दिया है कि शमशेर अन्तर्विरोधों के कवि हैं, वह शायद ऐसे ही विरोधाभासी वक्तव्यों की वजह से लेकिन ये दोनों रचनाप्रक्रिया के दो स्तर हैं जिन पर शमशेर एक साथ संचरित और संतरित हैं। उन्हें जहां अनुभूति अथवा उद्वेलन के तीव्रतम क्षणों में ही उनके अनुकूल भाषा मिल जाती है और स्वच्छन्दतावादी शैली की तरह भावोद्वेग के क्षणों में ही भाषिक खोज पूरी कर लेने को वह जितना जरूरी समझते हैं वहीं वह उस तवील प्रक्रिया से भी गुजरते हैं जिसमें काट-छांट और तराश की मेहनत ही नहीं, एक-एक शब्द और वर्ण के रूप-रंग आकार और ध्वनि-स्पर्श की छवियों को भी सजाया-संवारा जाता है। **"बस ऐ शमशेर चलकर, अब कहीं उजलतगर्जी हो जा, कि हर शीशे को महफिल में, गदाए मीना होना है"**··· के साथ **"स्वप्न जड़ित मुद्रामयि, शिथिल करुण, हरो मोह ताप, समुद्र, स्पर-उर वर: हरो मोह ताप—"** के भावस्तर और अन्दाजे-बयां, रचनाप्रक्रिया के इन्हीं स्तरों की मिसाल है और 'राम की शक्ति पूजा' के साथ निराला की बहरों की बेसाख्ता याद दिलाती हैं। इस रचना-प्रक्रिया को आप अवधि के आधार पर यांत्रिक ढंग से वर्गीकृत नहीं कर सकते कि 'एक अल्प अवधि तक चलती है दूसरी दीर्घ अवधि तक, न उसे आप डायरी या कि चित्र की सहायता या चित्र पर कवि के या कवि के चित्र पर हावी होने वाले सरलीकरणों'···से समझा सकते हैं। जिसे अल्पावधि तक चलने वाली प्रक्रिया समझा जाता है वह अपने आन्तरिक स्तरों पर जाने कब शुरू हुई थी, भूमिगत जल की तरह जाने कब और कहां से कहां तक प्रवाहित होती है और चित्र और शब्द वहां एक-दूसरे से टकराते नहीं, आपस में घुलमिलकर अन्तर्लयित हो जाते हैं। चित्र ही क्यों, शमशेर तो इस बात के कायल हैं कि **तस्वीर, इमारत, मूर्ति, नाच-गाना और कविता के ढंग ऊपरी तौर पर जितने अलग लगते हैं उतने हैं नहीं। इन सबमें बहुत कुछ एक ही बात अपने-अपने ढंग से खोलकर या छिपाकर या कुछ खोलकर कुछ छिपाकर कही जाती है।** इसीलिए कलाओं की अन्तर्निर्भरता ही नहीं, समानधर्मिता के समावेशी रचनात्मक चरित्र का जितना समृद्ध संसार शमशेर के यहां है उतना पूरे आधुनिक काव्य इतिहास में कहीं नहीं। उसकी जोड़ का समावेशी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रचना चरित्र मिलता है तो सिर्फ सूर में।

समावेशी रचना-दृष्टि

इसकी वजह वह सौन्दर्य दृष्टि है जो हर चीज में एक अन्त: सौन्दर्य दिखा देती है। **"सौन्दर्य की पूरी एक संरचना···दृश्य जगत पहले मेरी नजर में सौन्दर्य के एक कम्पोजीशन के रूप में आता है।"** इस सौन्दर्य दृष्टि को आप आत्मपरक या वस्तुपरक के खानों में नहीं बांट सकते कि आत्म और वस्तु की अन्तर्क्रिया से ही उसकी उपलब्धि होती है। दूसरा सप्तक के वक्तव्य में शमशेर ने कहा है: **'सुन्दरता का अवतार हमारे सामने पल-छिन होता रहता है। अब हम पर है कि हम अपने सामने और चारों ओर की इस अनन्त और अपार लीला को कितना अपने अंदर घुला सकते हैं।'** आप चाहें तो इस वक्तव्य के अवतार और अपार लीला और अपने अन्दर घुलाने को वैष्णव शब्दावली मानकर इसकी आत्मपरक सौन्दर्यवादी ही नहीं, रहस्यवादी व्याख्या भी कर सकते हैं और यह किया भी गया है—शमशेर को विशुद्ध सौन्दर्य का कवि घोषित और सिद्ध करने के लिए लेकिन। ऐसा आप तभी कर सकते हैं जब बाह्य जीवन जगत में पल छिन रूप लेते रूप-सौन्दर्य के अन्दर घुलने की आभ्यन्तरीकृत प्रक्रिया को नजरन्दाज कर दें। यहां सौन्दर्य से रमणीयार्थक शब्द का मतलब नहीं है···वह सौन्दर्यशास्त्र का सौन्दर्यानुभव और सौन्दर्यानुभूति है जिसका तात्पर्य काव्यानुभव और काव्यानुभूति भी है। यह बाह्य जीवन जगत के अनुभव की व्यापकता के साथ ही उसका साक्षात्कार और उससे तादात्म्यीकरण का स्वीकार भी है। इस पल-छिन अवतरित सौन्दर्य के साक्षात्कार में ऐतिहासिक परिवेश के सौन्दर्य अनुभव की वस्तुसत्ता की स्वीकृति के साथ ही उसके आत्मीयकरण पर भी उतनी ही संतुलित और समावेशी दृष्टि का यह तकाजा है। दरअसल यह तो सौन्दर्य की समग्रता का साक्षात्कार और उसे समग्रता में स्वात्मीकृत करने की दृष्टि है। पूर्णतर और समग्रतर और उतनी ही आधुनिक: **काश कि मैं न होऊं, न होऊं तो कितना अधिक विस्तार, किसी पावन विशेष सौन्दर्य का अवतरित हो**···कहकर मानो शमशेर सौन्दर्य की आत्मनिरपेक्ष वस्तु सत्ता का ही बखान कर रहे हैं। वह दृश्यजगत की मौजूदगी में अनुभव का उन्मेष है लेकिन उसकी सत्ता सिर्फ वस्तुगत ही नहीं है, अनुभव करने वाले मन और चैतन्य और कम्पोजीशन के रूप में उसे देखने वाली इन्द्रियों की भी उसमें उतनी ही अहम भूमिका है इसीलिए जितना वह देश और काम में विस्तृत है, उतना ही वह आभ्यन्तरीकृत भी है। तभी वह सौन्दर्य की इस उपस्थिति में विनीत और विनम्र हो जाता है। एक भोला और निरीह भाव उसमें जागता है, एक सरल और मौन समर्पण की अनुभूति लेकिन यह मौन और समर्पण 'अज्ञेय' का नहीं है जिसमें आत्मदान का मदमाता गर्व हो। इसमें तो समर्पण की प्रणत अस्ति है। **यहां दरिया राग बनते हैं, कमल फानूस और रातें मोतियों की डाल।** जितनी सघन ऐन्द्रियता इस सौन्दर्यानुभूति में है वह वैष्णव या सूफी संस्कारों की नहीं है, वह तो मानवीय अनुभव की घनीभूत और उत्तेजित अन्विति है और इस इन्द्रियानुभूति में भी चाक्षुष आसंगों की प्रधानता है कि जैसे आंखों में ही पांचों इन्द्रियां हो गयी हों। शमशेर में चित्रकला का बुनियादी आसंग इसी वजह से है। वे चीजों को अक्सर पेंटिंग की शक्ल में ग्रहण करते हैं, भले ही उनका बाह्य रूपाकार न हो, रंग न हो पर रंगों-आकारों के प्रभाव उनमें हैं। रंगों के भावनात्मक रूप में उनका प्रभाववाद सक्रिय होता है। मन पर पड़ने वाले प्रथम प्रभाव को ज्यों का त्यों यत्नपूर्वक शब्दों में रूपान्तरित करने की कोशिश इस सौन्दर्य के प्रति शमशेर की कवि दृष्टि इतनी प्रणत और समर्पित है कि वे उसका वर्णन या बयान करके

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसकी सत्ता और अन्विति को मानो विचलित करना नहीं चाहते। उनमें अतियथार्थवादी रूप-आकारों की आमद का भी यही राज है। चित्रकला में रुचि की वजह से यह हुआ या इसकी वजह से चित्रकला में उनकी रुचि हुई—कहना मुश्किल है कि बातें दोनों एक हैं। लेकिन वे अतियथार्थवादी सिर्फ अपने रूपाकारों की वजह से हैं। उनकी अन्तःप्रेरणा और विधायिनी कल्पना इतनी स्वैर और मुक्त-साहचर्य वाली नहीं है। इन रूपाकारों में भी शमशेर की समावेशी प्रयोजनवती कल्पना-शक्ति की सक्रिय भूमिका अनदेखी नहीं की जा सकती। उनमें अतियथार्थ-वादी रूपाकार भी आन्द्रे ब्रेतां या साल्वडोर डाली की बजाय लुई अरागां या पाल एलुआ से अधिक मिलते हैं। वह यथार्थ से कल्पना की मुक्ति नहीं है, उसमें स्वप्न के अर्द्धचेतन जगत का मुक्तसाहचर्य बिम्बविधान या असम्बद्ध भाव बिम्बों का विन्यास भी नहीं है। दरअसल वह यथार्थ के प्रतीत और आभासित विन्यास के पीछे छिपे वास्तव के साक्षात्कार का ही प्रयत्न है। उसमें आटोमेटिज़्म या स्वप्न की सम्भावनाओं की तलाश से अधिक मौजूदा रूपाकारों को तोड़ने का सरोकार अधिक है। यद्यपि यह महज एक कविता के प्रसंग में कहा गया है लेकिन उनकी पूरी सौन्दर्य दृष्टि और काव्य प्रक्रिया पर भी ज्यों का त्यों लागू होता है कि बकौल रामविलास शर्मा 'शमशेर सुर्रियां' लिस्ट अतियथार्थवादी—नहीं, एक रियलिस्ट-यथार्थवादी कलाकार हैं।' ···यथार्थवाद की कलात्मक संभावनाओं का इससे अधिक दोहन करने वाला, उसे इतनी ऊंची कलात्मकता तक उठाने वाला और कोई कलाकार समकालीन दृश्य पर मौजूद नहीं है। उनके लिए यथार्थ वह सब कुछ है जो मनुष्य के जीवन में घटित और अनुभूत होता है। **मनुष्य के स्वप्न, योजनायें, उसके समस्त कार्यकलाप, संघर्ष, आन्दोलन, क्रान्तियां उसका सारा व्यक्तिगत और सामूहिक यथार्थ है। मनुष्य की कल्पनायें भी उसके मानसिक जीवन का यथार्थ हैं।"** इसीलिए उनके यथार्थवाद का चरित्र भी अधिक कलात्मक और समावेशी है। वह कहते हैं— **"यथार्थवाद का झंडा उठाने का मतलब अगर सिर्फ यह हो जाता है कि प्रतीक रहस्य या केवल गति के तालछंद को व्यक्त करने वाली कला के हम सिरे से विरोधी हैं तो वह मेरे ख्याल से यथार्थवाद के साथ भी अन्याय होगा।"**

इसीलिए जब शमशेर कहते हैं **"मेरी रुझान ज्यादातर बिलकुल अपनी अकेली दुनिया के अन्दर खिंचते चले जाने की तरफ रही है"** या जब वे स्वयं ही स्वीकार करते हैं कि **"उनमें उलझे हुए भावों के लिए हुए सपनों की सी चित्रकारी है**···तब इसे उनकी आत्मपरक प्रगीतात्मक रूमानी प्रकृति की सनद के रूप में नहीं पेश किया जाना चाहिए। पूर्वापर सम्बन्धों और प्रसंगों से इसके निहित अर्थों तक पहुंचने की कोशिश भी की जानी चाहिए कि उनके शाब्दिक अर्थों की बजाय उनकी समझ को रेखांकित किया जाना चाहिए क्योंकि शमशेर में ज़ोर जितना अभि-व्यक्ति की सच्चाई पर है उतना ही अनुभूति की सच्चाई पर भी है। **अभिव्यक्ति अपनी ओर से सच्ची हो, यही मात्र मेरी कोशिश रही** के साथ ही वह यह भी कहते हैं, **सच्ची अनुभूति की एक किरण भी कहीं अधिक मूल्यवान है। मुख्य चीज कलात्मक अनुभूति की सच्चाई और शक्ति है, शैली या विषय नहीं**···वह जितने सजग और संवेदनशील कला और कलात्मकता के प्रति हैं उतने ही सामाजिक और आदर्शों के प्रति भी कि **कवि होने के साथ-साथ एक नागरिक भी हूं और मैं अपने नागरिक के उत्तरदायित्व पथ पर अपने कवि को आड़े आने देना नहीं चाहता।**···और उनमें कवि और नागरिक एक-दूसरे के लिए सीमा का काम नहीं करते कि उनके बीच किसी लक्ष्मण रेखा को खींचने के लिए आप बेताब हों। उनमें उनकी सीमाएं अन्तर्लयित हैं। इसीलिए जब वह कहते हैं कि **अपनी काव्यकृतियां मुझे दरअसल सामाजिक दृष्टि से कुछ बहुत मूल्यवान**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं लगतीं, उनकी वास्तविक सामाजिक उपयोगिता मेरे लिए एक प्रश्नचिह्न-सी ही रही है, कितनी ही धुंधली सही'''तब वह अपनी चारित्रिक विनम्रता में भी कला के सामाजिक संदर्भों और आदर्शों की ललक को व्यक्त करते हैं। मैं एक सजग संवेदनशील बाहरी प्रभावों को ग्रहण करने के प्रति उन्मुख पौधा हूं। इसमें भी यही सरोकार मौजूद है और मैंने हमेशा जीवन के शुद्ध-तर मूल्यों को ही अपनाया, दुनियावी मूल्यों को नहीं, इस आदर्शवादी मूल्यचेतना का संस्कार भी वहीं है। इसी संस्कार की वजह से मैं अपने सेन्टीमेन्टस को भी एक मूल्य प्रदान कर सका। यह इसलिए कि मनुष्य के भीतर ज्यादा गहराई के साथ उसके मनुष्यत्व तक पहुंचने की तड़प उनमें है। और यहीं आकर उनकी प्रतिबद्धता अपनी सम्पूर्ण बुनियादी चेतना और व्यापक मानवीय संस्पर्शों से समृद्ध होती है। जब वह कहते हैं कि प्रत्येक सच्चा कलाकार न्याय, मानवीय सौहार्द और प्रेम और लोक मंगल के लिए प्रतिबद्ध होता है इसीलिए उनकी केन्द्रीय चिन्ता मनुष्य और मनुष्यता हो जाती है। कि 'मैं अब समाजवादी ही बनूंगा' या 'काट बुर्जुआ भावों की गुमटी को गाओ का स्वर भी उनमें इसीलिए फूटता है। इसीलिए 'उनके समय के, चौराहों के चकित केन्द्रों से उद्‌भूत होता है कोई : उसे व्यक्ति कहो : कि यही काव्य है, आत्मतम'''।

कवि की सामाजिक और मानवीय सम्पृक्ति को प्रतिबद्ध मार्क्सवाद विरोधियों ने विचारधारा और प्रगतिवाद से सम्बद्ध करके उसका जो भाष्य किया है वह उनकी कविता की बुनियादी समझ से मेल नहीं खाता। मार्क्सवाद की तार्किक परिणति को अपनी रचनात्मकता का केन्द्र बना लेने का दुस्साहस उनमें नहीं था (रमेशचंद्र शाह) कहकर अथवा : शमशेर का प्रगति-वाद उनकी कविता के हाशिए तक सीमित रह गया : या मार्क्सवाद वह हिस्सा है जो काव्या-नुभूति के बाहर पड़ता है'''(विजयदेव नारायण साही) कहकर उनके मार्क्सवाद पर संदेह किया गया। मजे की बात है कि यही लोग यह भी कहते हैं : उससे भी उनके लिए वहीं तक काव्य प्रेरणा पा सकना सम्भव हुआ जहां तक कि उनके स्वभाव को सन्तुष्ट कर सकता था, जहां तक कि वह उनकी भावना का अंग बन सकता था'' (शाह) अथवा शमशेर का मार्क्सवाद आरम्भ से ही जहां था वहीं तक की बारीक शमशेरीय छलनी से छाना हुआ मार्क्सवाद है'''(साही)। हम जोर देकर कहना चाहते हैं कि किसी भी कवि का विचारधारा या विश्वदृष्टि के प्रति यही रुख हो सकता है और इसे खुद शमशेर स्वीकार करते हैं। जहां तक वह मेरी निजी उपलब्धि है वहीं तक मैं उसे दूसरों के लिए भी मूल्यवान समझता हूं। आप चाहें तो जहां तक, वहीं तक ही में रुक सकते हैं और चाहें तो आगे बढ़कर उसे 'दूसरों के लिए भी मूल्यवान समझता हूं' के संकेतों को भी ग्रहण कर सकते हैं। जरा आगे चलकर देखें कि इस जहां तक, वहीं तक की सीमा या स्तर क्या है? यही नहीं कि मार्क्सवाद का जनवादी रूप उसकी जनवादी आकांक्षा हमेशा मुझे आकर्षित करती रही बल्कि मार्क्सवाद मेरी जरूरत थी, सच्ची जरूरत, इसने मुझे मार्बिड और रुग्ण मनःस्थिति से उबारा। इसीलिए मार्क्सवाद और मेरे आदर्शवाद में कम से कम मेरे लिए कोई विरोधाभास नहीं रहा। मार्क्सवाद मेरे तईं मेरे उस आदर्शवाद का ही एक जुज था, कोई सिद्धान्तबाधिता नहीं। वह मेरी एक रूहानी जरूरत थी'''इसके बावजूद जो लोग उनके मार्क्स-वाद और कविता में विरोधाभास देखते हैं उसे उनकी कविता में हाशिये की चीज मानते हैं उनकी दृष्टि को क्या कहा जाय! शमशेर ने बहुत पहले ही अपने वक्तव्य में साफ साफ स्वीकार कर लिया है कि इसका सीधा-सीधा मतलब हुआ अपने चारों तरफ की जिन्दगी में दिलचस्पी लेना, उसको ठीक-ठीक याने वैज्ञानिक आधार पर (मेरे नजदीक यह वैज्ञानिक आधार मार्क्स-वाद है) समझना और अनुभूति और अपने अनुभव को इसी समझ और जानकारी से सुलझाकर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्पष्ट करके पुष्ट करके अपनी कला भावना को जगाना है।

इस इबारत के केन्द्र में स्थित मार्क्सवाद को हाशिये की चीज कहकर जो हाशिया-आराई की गयी है उसे क्या कहा जाय? दरअसल जिसे शमशेर 'समाज सत्य' का मर्म कहते हैं वह इतिहास की धड़कन तो है ही लेकिन यह विजयदेवनारायण साही **के शब्दों में मार्क्सवाद को विरल** करने का प्रयत्न अथवा **कुछ अधिक ढीली शब्दावली देना** नहीं है, न ही यह **हाशिये की लिखावट को कुछ और सूक्ष्म** या **धुंधला बनाने की कोशिश** है। यह मार्क्सवाद के वैज्ञानिक आधार पर इतिहास के मर्म और समाज के सत्य को समझना है। इसीलिए दूसरा सप्तक के वक्तव्य में शमशेर समाज सत्य को आग्रहपूर्वक मार्क्सवाद का पर्याय घोषित करना ज़रूरी समझते हैं। साही जी के शब्दों में मान लिया जाय कि **केन्द्रीय शब्द निजी उपलब्धि है** लेकिन तुरन्त सवाल उठता है निजी उपलब्धि किसकी, काहे की···ज़ाहिर है समाज सत्य की। अब यह समाज सत्य वहीं क्यों है जो हमारे निजत्व के बाहर है। बाहर के सत्य को अपने भीतर खींच लाने की प्रक्रिया ही यदि निजी उपलब्धि है तो बाह्य का आभ्यन्तरीकरण ही हुआ जो जीवनानुभव को काव्यानुभव के स्तर पर उठाने की रचनात्मक प्रक्रिया है। क्या समाज सत्य हमारे निजत्व के भीतर भी नहीं है? समाजसत्य को काव्येतर अनुभूति वही लोग कहते हैं जो एस्थेटिक अनुभव वाले आधुनिक भावबोध के समर्थक हैं और जिनके निस्सहाय निषेध का निषेध मुक्तिबोध कर चुके हैं। शमशेर भी अपनी निजी उपलब्धि को समाजसत्य के सापेक्ष्य ही मानते हैं। इस रचनादृष्टि में काल के लघुतम खण्ड और पल में देश का सम्पूर्ण विस्तार और जहान समाया हुआ होता है। इतिहास प्रवाह और समाज सत्य को समझने के लिए ही बार-बार समाज सत्य के जल और आकाश में पैठता है: देश या मिट्टी की स्थिति उसी में समायी हुई है। शमशेर कहते हैं कि: **ह्यूमन सर्फरिंग या ह्यूमन ट्रेजेडी···ह्यूमन लाइफ की जो सर्फरिंग है वह सर्फरिंग इट सेल्फ इज अ व्हेरी काम्प्लेक्स थिंग**···और उनका आदर्श है···कि **ऐसे ह्यूमन एलीमेन्ट को छूना जो यूनीवर्सल भी है और पर्टीकूलर भी···यूनीवर्सल को पर्टीकूलर बनाना ही समाज सत्य की निजी उपलब्धि है। और पर्टीकूलर को यूनीवर्सल बनाना काव्याभिव्यक्ति का संघर्ष है।**·· शमशेर समाज सत्य और निजी सत्य के कृत्रिम द्वन्द्व और अन्तर्विरोध को अपनी समावेशी रचनादृष्टि से उत्तीर्ण कर ऐसा ही एक सार्वजनीन स्तर पाना चाहते हैं। उनके यहां काव्य के स्तर पर इन दोनों में कोई द्वन्द्व नहीं रह जाता। शमशेर जोर देकर कहते हैं: **व्यक्तिगत, कला में कुछ नहीं होता। विशुद्ध निजी कुछ भी नहीं होता। निजी प्रेम तक अभिव्यक्ति के रूप में आकर समाज की वस्तु हो जाता है। उसकी रचना प्रक्रिया परिवेश की क्रियाओं से मिलकर एक नया सृजनशील द्वन्द्व आरम्भ कर देती है।**···इस तथ्य को स्वीकार कर लेने पर न तो समाज सत्य निजत्व के बाहर रह जाता है और न निजी उपलब्धि सौन्दर्यशास्त्रवादी ऐकान्तिक अनुभूति रह जाती है।

काव्य व्यक्तित्त्व के संस्कार

इस समावेशी रचना दृष्टि से शमशेर का जो काव्य व्यक्तित्त्व निर्मित हुआ है उसमें रचना के कलात्मक और सामाजिक संस्कारों का अन्तर्लयन है। उनके काव्य व्यक्तित्त्व में घनघोर प्रयोगशीलता है लेकिन वह 'अज्ञेय' से अधिक होती हुयी भी उनसे भिन्न कोटि की है। अव्वल तो उनकी संवेदना का क्षेत्र भी अधिक व्यापक है दोयम उसमें व्यक्ति और समाज, वैयक्तिकता और सामाजिकता के स्तरों पर समान संतरण है। उनका कृत्रिम द्वन्द्व नहीं। यही वजह है कि जहां उन्हें रूपवादी अपने करीब समझते हैं वहां वे प्रगतिशील सामाजिक चेतना के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी उतने ही प्रासंगिक कवि हैं। एक ओर जहां उनमें एक स्वस्थ सामाजिक चेतना, जन की मुक्ति आकांक्षा और क्रान्ति की संतुलित वाणी के साथ मानव व्यक्तित्त्व की समग्रता का संस्कार है तो दूसरी ओर एक प्रयोगशील कवि के रूप में भी उतनी ही कलात्मक ऊंचाई और श्रेष्ठता का रचना संस्कार भी। शायद यही वजह है कि उनकी रचनायें उन व्यक्तिवादी परिणतियों से बच सकी हैं जो 'अज्ञेय' में अनायास आ गयी हैं। बकौल विपिन कुमार अग्रवाल 'उनमें अपने अन्तर्जगत को समेट लेने के लक्षण सबसे पहले दिखायी दिये यद्यपि उनका बाह्य जगत सरल रंगीन सीढ़ियों का बना है पर अन्दर की उलझन के जानबूझकर प्राप्त किये गये अभाव में स्पष्ट रूप से कविता में आकार ग्रहण करता है···।' शमशेर के काव्य व्यक्तित्त्व की यह अपनी खासियत है कि वे बड़ी सहजता से अपनी आत्मपरकता के साथ सामाजिक दायित्व को संश्लिष्ट कर लेते हैं। इतिहास की धड़कन को अपनी भावनात्मक सर्जना का प्रसंग बना लेना और सामाजिक प्रतीति और प्रासंगिकता के समसामयिक पहलू को उत्तेजित और ओजपूर्ण र्‌हेटारिक के साथ ही ऊंचे कलात्मक संस्कारों से समृद्ध कर सकना उन्हीं के बस की बात है। एक हद तक उनका काव्य व्यक्तित्व आत्मकेन्द्रित कहा गया है लेकिन सामाजिक सार और अन्तर्वस्तु के प्रति भी वह उतनी ही ईमानदारी और प्रामाणिकता के साथ संवेदनशील है। डॉ० रघुवंश ने सही कहा है कि शमशेर छायावादी, उर्दू ग़ज़ल, प्रतीकवाद, रोमांटिक, बिम्बवाद, अतियथार्थवाद और संस्कारी क्लासीकल काव्यबोध के स्तरों पर समान रूप से संचरण करते हैं।···इसके बावजूद वे इनमें से किसी एक ही सांचे में फिट नहीं किये जा सकते, यद्यपि सबकी रचनात्मक विशेषताओं को वे आत्मसात किये हुए हैं।

शमशेर पर प्रभाववाद के प्रभाव की बात बहुत की गयी है। प्रभाववादी चित्रकार संवेदनाओं के अन्तर्राग के प्रति जागरूक कलाकार रहे हैं। वे कला में शुद्ध संवेदना की सर्वोच्चता को स्वीकार करते हैं और ऐन्द्रिय प्रतिक्रिया को कला का प्रेरक मानते रहे हैं। सेयुरत, सिग्नेक, पिसारो और क्रास वगैरह ने टोन्स और रंगों के चाक्षुष सम्मिलन को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था और उनका मक़सद रूप, रस, स्पर्श और गंध की संवेदनायें ही नहीं, संवेदनाओं के रूप, रस, गंध और स्पर्श को भी व्यक्त करना था। शमशेर ने उन्हीं मानसिक प्रतिमाओं और बिम्बों को रंगों की बजाय शब्दों में अनूदित करने की कोशिश की। लेकिन उनकी सपनों की सी चित्रकारी भी उतनी अमूर्त और अतियथार्थवादी या प्रभाववादी नहीं है जितनी कि सेजां या गोगां में है या कमिन्ग्स या लावेल की कविताओं में है। उनमें चीजों और संवेदनाओं को मूर्त करने, भावनाओं के प्रसंग को व्यंजित करने और सौन्दर्य के अनेकविध अवतारों का समावेश करने की ललक है। वह सिर्फ दृश्य के सर्वाधिक संवेदनाघात करने वाले अंशों को प्रस्तुत करते हैं इसलिए संवेदना का अन्तर्राग उनमें गूंजता और झंकृत होता है। जैसे कि 'एक पीली शाम' का पीला रंग ही संवेदनाघात और संवेदना के अन्तर्राग को रचता है : 'पीली शाम/पतझर का पीला पत्ता/कृशम्लान हारा-सा तुम्हारा मुख कमल' सब भावनाओं में जिस शिथिल पल को केन्द्रित करते हैं उसी में अटका हुआ आंसू भी सांध्य तारक-सा अतल में अब गिरा अब गिरा-सा है···।

लेकिन यह प्रभाववाद जिस आत्यन्तिक व्यक्तिवाद की सीमा में अपनी सार्थकता ढूंढ़ता है वह शमशेर की संवेदनाओं का चरित्र नहीं है। वे उस ऐतिहासिक परिवेश के प्रति भी उतने ही संवेदनशील हैं जिसके प्रति जागरूकता उन्हें समाज सत्य, समाज सत्य के मर्म और इतिहास की धड़कन सुनने के प्रति सचेत करती है। यह ऐतिहासिक परिवेश जितना काव्यगत संदर्भों का है, उतना ही राजनीतिक और सामाजिक संदर्भों का भी है। मूल्यों और आदर्शों की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जो टकराहट प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के बीच काव्यात्मक संदर्भों में समकालीन परिदृश्य में हुई वह एक व्यापक धरातल पर राजनीतिक विचारधारा और सामाजिक आदर्शों की टकराहट भी थी। जिसके पीछे व्यवस्थागत कारण और ऐतिहासिक ताकतों का द्वन्द्व सक्रिय था। ऐसा नहीं कि बकौल साही 'वक्तव्य उन्होंने सारे प्रगतिवाद के पक्ष में दिये, कवितायें उन्होंने बराबर वे लिखीं जो प्रगतिवाद की कसौटी पर खरी न उतरतीं'···दरअसल वक्तव्य और कविता दोनों में शमशेर की निष्ठा और भावनात्मक ईमानदारी पर शक नहीं किया जा सकता कि उन्होंने प्रगतिवाद को कलात्मक संस्कार और कविता को सामाजिक सरोकार देने की भरसक रचनात्मक कोशिश लगातार की है या यों कहें कि ऐतिहासिक परिवेश को रचनात्मक संदर्भ दिये हैं। अपने काव्यादर्श में वे इन दोनों के बीच किसी खाई को महसूस नहीं करते। मसलन् जिस चीन कविता के बारे में साही ने यह कहा है कि 'अगर कविता के साथ छपी टिप्पणी और हाशिए के चीनी अक्षरों का जिक्र न किया जाय तो कविता में अपने आप प्रगतिवाद का कोई अवशेष नहीं रह जाता ·।' गौर करें कि इस कविता में खिला हुआ फूल, गम्भीर शपथ और प्रण, महान संदेश, निशाने पर छूटने को संतुलित सधे हुए गति के तीर, विजय का आलोक चिह्न और हम दोनों···सबमें प्रगतिवाद की उत्तप्त उपस्थिति अनदेखी नहीं रह जायेगी और ऐतिहासिक परिवेश की रचनात्मक मौजूदगी भी ऐन इबारत में महसूस की जा सकती है। यह ठीक है कि शमशेर में भी इस प्रसंग में एक आन्तरिक संघर्ष है लेकिन यह संघर्ष विभाजित व्यक्तित्व का नहीं, वह व्यक्तिवाद के घेरे से निकलकर समाज सत्य और समाज के मर्म को निजी उपलब्धि बनाने का रचनात्मक संघर्ष है। अपनी व्यक्तिगत जीवन परिस्थिति और निराशा की वजह से उनमें अवसाद की वह भूमिका जरूर है जिसमें : **बिल्कुल अपनी अकेली दुनिया के अन्दर खिंचते चले जाने :** का रुझान होता है लेकिन वह शीघ्र ही अकेलापन, अंधेरा और मृत्यु इच्छा की अनुभूतियों की मार्बिड और रुग्ण मनःस्थिति पर विजय पा लेते हैं और यहीं मार्क्सवाद रूहानी ज़रूरत के रूप में उनके काम आता है। जिस अंधेरे संसार में वह दाखिल होते हैं, उसी मार्क्सवाद के सहारे वह वहां से बाहर भी आ जाते हैं। बिल्कुल लुई अरागां या पाल एलुआ की तरह। अतियथार्थवादी संसार को छोड़कर मार्क्सवाद के प्रामाणिक संसार में वे प्रवेश करते हैं कि उन्हें मालूम है : 'दवा मेरे दिल की मिलनी है मुहाल' चुनांचे 'अपनी अभिव्यक्ति के लिए, पर मैं दूंगा ज्ञान अपने संसार को, हृदय को कर्म के पत्थरों में दबा दूंगा···।' इसी निश्चय के तहत उनकी कविता में सामाजिक सांस्कृतिक उत्कर्ष के लिए आग्रह और आकुलता मिलती है और वह अपने उस व्यक्तिवादी अहं का संतरण करते हैं। व्यक्तित्व-अन्तरण की यह प्रक्रिया मुक्तिबोध में जितने विस्तार से मिलती है उसके संकेत शमशेर में उतने ही केन्द्रीय हैं। हालांकि शमशेर में अपने व्यक्तित्व का येट्स की तरह उद्घाटन नहीं है। वे अपने व्यक्तित्व को कविता में उस तरह 'असर्ट' नहीं करते जैसे निराला करते हैं लेकिन अपने अहंलोप और आत्मविलोपन के ज़रिये वे अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप ज़रूर छोड़ते हैं : 'मेरा मैं मरेगा, एक क्षण,'···कहने वाला कवि ही यह कह सकता है : **इश्क की शायरी है खाक, हुस्न का जिक्र है मजाक, दर्द में गर चमक नहीं, मैं गर गिला नहीं।**···क्योंकि 'उसका आत्मतम, काव्य ही नहीं वह व्यक्ति भी है जो समय के चौराहों के चकित केन्द्रों से उद्भूत होता' है।

शमशेर कहते हैं : **कला का संघर्ष समाज के संघर्ष से एकदम कोई अलग चीज नहीं हो सकती और इतिहास आज इन संघर्षों का साथ दे रहा है। सभी देशों में, बेशक यहां भी, दरअसल आज की कला का असली भेद और गुण उन लोककलाकारों के पास है जो जनआन्दोलनों में**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिस्सा ले रहे हैं, टूटते हुए मध्यवर्ग के मुक्त जैसे कवि उस भेद को पाने की कोशिश में लगे हुए हैं।'''यही है शमशेर का आत्मसंघर्ष और चाहें तो इसे कह लें अन्तर्विरोध'''हीन भाव, हीनभाव, मध्यवर्ग का समाज दीन'''के साथ यहां'''आगे-आगे जलती चलती है, लाल-लाल, वज्र कठिन कमकर की मुट्ठी में, पथ प्रदर्शिका मशाल है।' इसीलिए वहां सेनानी, वीर युवक, अतिबलिष्ठ, वामपंथगामी वह, समय साम्यवादी होगा ही'''और यह सीधा र्‌हेटारिक भी उसी से आता है। 'तुम कम्युनिस्ट हो यानी कलाकार का मर्म, यानी भविष्य का मर्म भाव, आज के नाटक के अन्त में उस नाटक का अन्त मैं हूं।'''व्यक्तित्व की प्रखर आत्म चेतस कलाचेतना के साथ ही सामाजिक दायित्व का जो आग्रह उनमें है उससे उपजा आंतरिक द्वन्द्व आडेन, स्टीफेन स्पेन्डर, पाब्लो नेरुदा और लोर्का आदि में भी उतना ही तीव्र है और यह महज संयोग नहीं है कि अन्तर्विरोध की यह बात निराला, मुक्तिबोध और शमशेर तीनों के प्रसंग में की जाती है।

रचना का प्रतिसंसार

इस रचनादृष्टि और काव्य व्यक्तित्व से शमशेर का जो रचना-संसार निर्मित हुआ है वह सामाजिक संसार में रचना की भूमिका को समृद्ध कलात्मक ऊर्जा से निभाने वाला संसार है। उनका संसार मानवीय जिम्मेदारी और रचनात्मक सरोकारों को एक साथ निभाता हुआ, इस जीवन जगत की विविधवर्गी संवेदनाओं से प्रतिकृत होता हुआ एक ऐसा प्रतिसंसार है जो उन दोनों से समृद्ध होता है। शमशेर के संसार में यथार्थवादी और भाववादी बोध स्तरों से अलग एक ऐसा समावेशी काव्यबोध और स्तर मिलता है जो दोनों से प्रतिकृत होता हुआ एक तीसरे यथार्थ की रचना करता है जहां : 'तीन, ब्रह्माण्ड, मिले चले गये हैं,'''जिसमें एक महान सूरज प्रत्येक व्यक्ति का उगता है'''और 'बात अन्दर की है और वहां की यहां से देखने की नहीं जहां शामें डूबकर फिर सुबह बनती हैं।'''यह ठीक है बकौल रामविलास शर्मा 'रूप और आकार की समग्रता के बदले शमशेर एक झलक भर देते हैं, पार्श्वबिम्ब से काम चलाते हैं'''' लेकिन यह झलक और पार्श्वबिम्ब अपने आप में इतना समावेशी होता है कि रूप और आकार की समग्रता अपने आप आ जाती है। यहां भी उनकी : **खास कोशिश यह रही है कि हर चीज की, हर भावना की जो एक अपनी भाषा होती है जिसमें वह कलाकार से बातें करती हैं, उसको सीखूं**'''इस बात तो उनकी व्यक्तियों पर लिखी कविताओं के प्रसंग में बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। समकालीन काव्य परिदृश्य में शमशेर ही ऐसे कवि हैं जिनकी मानवीय दिलचस्पी व्यक्तियों के माध्यम से केन्द्रित होती है। उन्होंने किसी भी कवि से अधिक व्यक्तियों को अपनी रचनाओं का केन्द्र बनाया है। न केवल यह कि जो चीजें उनको कविता के लिए प्रेरित करती हैं, उनके मन में काव्यात्मक अभिव्यक्ति को जन्म देती हैं, उनमें व्यक्तियों की एक खास भूमिका है। बल्कि उनकी कविताओं की शुरुआत के रूप में भी एक व्यक्ति मौजूद रहा है। यहां भी वह उसके समग्र प्रभाव और वह कोई चीज जो वह पैदा कर रहा है, उसका संकेत ही प्रमुख होता है—मसलन भुवनेश्वर पर उनकी कविता।

इसीलिए उनकी रचनानुभूति की प्रकृति भी सांकेतिक, समावेशी और संश्लिष्ट है। उसमें विसंवादी तत्त्वों को बहिष्कृत करके कोई इकहरी संवेदना नहीं है, न ही उनको शामिल करके कोई मिश्रण या घोल तैयार किया जाता है। बल्कि उनके अन्तर्लयन से एक नया यौगिक ही यहां बनाया जाता है। यही रचना की कीमियागरी है। इसीलिए उनकी रचनानुभूति सम-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कालीन परिदृश्य में अपने चरित्र और प्रभाव में सबसे अलग और विशिष्ट नजर आती है। वह औपचारिक या स्थूल यथार्थ अथवा परिचित और सतही जीवन के पार जाने की तड़प से निर्मित होती है। उसमें नितान्त आत्मीय और ठेठ वस्तुपरक दुनिया का जो संकलन है वही उनकी अनुभूति को निजी और सार्वजनीन बनाता है। उसे व्यापकता और गहराई देता है। उनमें भोगे हुए अनुभव के यथार्थ की निजता और उस अनुभव का वृहत्तर साक्ष्य एक साथ मिलता है। भोक्ता मन और सर्जक मनीषा वहां एक-दूसरे के विपरीत द्वन्द्व में नहीं है। दरअसल भोगते हुए सृजन और सृजन के दौरान भोग की स्वरलिपियां उनमें एक साथ हैं। उनमें अनुभव के कसकते-दुखते मूलों से पृथक होने की नहीं, बल्कि उसके आंगिक और जैविक विकास की परिणति मिलती है। इसीलिए यहां उनका ऐतिहासिक परिवेश एक अनुभूत सचाई है, वहीं उनकी नितान्त निजी अनुभूति का भी एक ऐतिहासिक परिवेश है। वे अपनी भावनाओं में, अपनी प्रेरणाओं में, अपने संस्कारों में समाज सत्य के मर्म को ढालते हैं और समाज सत्य के मर्म में अपनी निजी उपलब्धि चाहते हैं। यह निजी उपलब्धि बाहर के सत्य को अपने भीतर खींच लाने की प्रक्रिया नहीं है। दरअसल उनके भीतर भी हमेशा एक बाहर विद्यमान रहा है। उनके लिए समाज सत्य काव्येतर अनुभूति नहीं है। दरअसल शमशेर के लिए कुछ भी काव्येतर नहीं है। इसीलिए समकालीन परिदृश्य में अपने मिज़ाज से ही जिस हद तक वे कवि हैं उस हद तक कम लोग हैं। सुन्दरता का अवतार उनके सामने पल-छिन होता रहता है। वे उन लोगों में से नहीं हैं जो एस्थेटिक इमोशन की प्रतीक्षा या किसी देवी प्रेरणा या इल्हामी लम्हे के मुन्तजिर हों। उनमें तो सादे जीवन की धड़कन, रोजमर्रा जिन्दगी की चीजों और हरकतों को ही रचनानुभूति के स्तर पर उठा देने का काव्यत्व है। उनमें जीवनकर्म और कविकर्म का द्वैत या दुविधा नहीं, संगीत है। ऐसा नहीं है कि वे नागरिक की भूमिका छोड़कर कवि होते हैं या कवि की भूमिका तर्क कर नागरिक। ऐन कविकर्म के बीच नागरिक और नागरिकता में कवित्व का ऐसा दुर्लभ संयोग कम ही मिलता है। यही वजह है कि उनकी जीवनानुभूति में चाहे जितनी संघर्ष, द्वन्द्व, तनाव और बेचैनी हो, अकेलापन, और मानवीय असामर्थ्य हो, उनकी रचनानुभूति प्रशान्त और अविचल है। द्वन्द्वों और विरोधों और अतिरेकों के बीच क्रिया और प्रतिक्रिया का एक समावेशी रूपांतरण, जो दो निषेधों के आपसी निषेध से पैदा नहीं होता, निषेध को विधेय के रूप में आत्मसात करने की रचनात्मक दृष्टि से जन्मता है। जहां सारी बेचैनी, व्याकुलता, छटपटाहट, उलझाव शान्त हो जाता है और ऊपर तैरती है एक मौन आर्द्र विनम्र सरलता। शमशेर स्थितियों और हरकतों के कवि नहीं, उनकी संवेदनाओं के कवि हैं। इसकी वजह चित्र या अन्य कलाओं में उनकी गहरी दिलचस्पी है या संवेदना के इन्हीं ऐन्द्रिय सरोकारों की वजह से अन्य कलाओं में उनकी दिलचस्पी हुई है। अन्य कलायें कुछ कहती या वर्णित नहीं करतीं। वे अपने-अपने माध्यमों, रंगों-रेखाओं-स्वरों-ध्वनियों और रूपाकारों के जरिये संवेदनाओं को संप्रेषित करती हैं। चित्रों में ही चाहे वह वाश शैली हो या प्रभाववादी, अमूर्त हो या अतियथार्थवादी, या अभिव्यंजनावादी—सबकी सब संवेदनाओं को ही वहनकरना चाहती हैं और यथार्थ के समानान्तर या विपरीत जो प्रतिसंसार रचती हैं, उनमें मानवीय एहसास की शिद्दत, अनिवार्यता और तात्कालिकता ज्यों की त्यों चली आती है। शमशेर भी शब्द की शक्ति को चित्र की वाणी-टोन और संगीत के स्वर तक उठा देना चाहते हैं इसीलिए वे यथार्थ के वास्तवसंसार की एवज में संवेदनाओं का प्रतिसंसार रचते हैं और फिर सारी संवेदनाओं को एक ही संवेदना राग या रंग में घुलाकर एक समावेशी राग और रंग की रचना करते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भावप्रसंगों की सर्वाश्लेषी रचनात्मकता

मुक्तिबोध ने सही कहा है कि अन्य कवि केवल भावना व्यक्त करते हैं, शमशेर बाह्य दृश्य के भीतर भाव प्रसंग प्रस्तुत करते हैं। उनका मक़सद इन वास्तविक भावप्रसंगों में उपस्थित संवेदनाओं का चित्रण होता है। ये संवेदनायें वास्तविक अर्थात् जीवन-प्रसंग से बद्ध होती हैं और जीवन-प्रसंग वास्तविकता का एक मूर्त और शक्तिशाली भाग होते हैं। जहां दूसरे कवि प्रसंग की बजाय रुख और एटीच्यूड के साथ संचित अनुभव प्रगट करते हैं और उनका रुख भावनाओं का सामान्यीकरण कर देने का है वहां शमशेर का काव्य विषय यही भावप्रसंग होते हैं। इसी लिए वे भावप्रसंग भी विशिष्ट हो जाते हैं। शमशेर सामान्यीकृत भावनाओं और सामान्यीकृत रुखों के कवि नहीं हैं। सामान्यीकृत भावनायें प्रकट करना आसान है किन्तु भावप्रसंग में साक्षात संवेदनाओं के वास्तविक चित्रण के लिए अनेक प्रयोगों की आवश्यकता होती है—खासकर तब जबकि कवि संवेदनाओं के गुण राग के प्रति इतना संवेदनशील और जागरूक हो।···

उनकी सवेदनशील दृष्टि भावप्रसंग के वैशिष्ट्य पर होती है। वह वास्तविकता के सूत्रों में गुम्फित और ग्रथित होती है। वे भावप्रसंग की वास्तविकता पर अपने मन का रंग नहीं चढ़ाते। शमशेर रूप-रस-स्पर्श-गंध की संवेदनाओं के प्रति ही नहीं, संवेदना के रूप-रस, स्पर्श और गंध के प्रति भी उतने ही संवेदनशील हैं और उन्हें वे बिम्बों के सहारे व्यक्त करते हैं। उनमें चीजों, स्थितियों और हरकतों और मनःस्थितियों की गहरी पहचान और विशिष्ट संवेदनाओं का साक्षात्कार होता है। इसे ही भावनाओं के यथार्थ की खोज कहा जाता है। और बकौल शमशेर **"कविता में हम अपनी भावनाओं की सच्चाई खोजते हैं।" स्व को वृहत्तर 'पर' से जोड़ने की** अनिवार्य सजगता का पता भी हमें इसी से चलता है। इसी स्तर पर कविता मनुष्य के जीवन में हिस्सा लेने वाला एक अनिवार्य प्रसंग हो जाती है। और स्वयं कवि व्यक्तित्व के लिए उसकी एक जरूरी भूमिका होती है। शमशेर जब कहते हैं: **"कविता के माध्यम से मैंने प्यार करना, अधिक से अधिक चीजों को प्यार करना सीखा है, मैं उसके द्वारा सौन्दर्य तक पहुंचा हूं"** तो कुछ भी आश्चर्यजनक और बनावटी नहीं लगता।

अपने 'स्व' को वृहत्तर 'पर' से जोड़ने की इसी अनिवार्य सजगता का नतीजा है कि शमशेर की कविताओं में चीजों, स्थितियों, हरकतों और संवेदनाओं अथवा भावप्रसंगों की विशेषता अपने आप उजागर होती है। वहां सामान्य भी विशेष बनकर आता है। विशेष को सामान्यीकृत करने की बजाय वे सामान्य को ही विशेषता से समृद्ध कर देते हैं। उनकी कविताओं में व्यक्तित्व विशेष के केन्द्रीय सूत्र तो उभरते ही हैं, जैसे निराला, मुक्तिबोध, नरेन्द्र शर्मा, गिन्सवर्ग, राकेश, भुवनेश्वर और त्रिलोचन पर लिखी कवितायें। उनमें उनके अपने निजी सम्बन्धों के आधार भी उजागर होते हैं। यहां एक खास बात देखी जा सकती है कि विशेष व्यक्तियों-स्थितियों भावप्रसंग की केन्द्रीयता के बावजूद इन कविताओं में विशेषता, सीमा की पर्यायवाची नहीं है। उनके सीमित व्यक्तित्व-संदर्भ भी इतने सार्वजनीन और व्यापक हो गये हैं कि वहां भी कवि अपनी अनुभूति के माध्यम से किसी सार्वजनीन और कालजयी सत्य के साक्षात्कार के लिए बेचैन है। सामान्य को विशिष्ट बनाने की यह रचनात्मक दक्षता त्रिलोचन और नागार्जुन की बेसाख्ता याद दिलाती है। 'फटे हुए लिफाफे' और 'कुछ सोचकर' में इसे देखा जा सकता है। दरअसल यह अन्दाजेबयां शमशेर को उर्दू परम्परा से मिला है जहां अतिपरिचित और अतिसाधारण के भी विशेष संकेत भास्वर हो उठते हैं। उनके प्रकृति चित्रों को ही देख लीजिए। वहां भी प्रकृति अपने अन्तर्बाह्य सौन्दर्य से जिस अनुभव का उन्मेष करती है वह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सामान्यीकृत नहीं, विशेष ही होता है लेकिन इस विशेष की निजी उपलब्धि शमशेर सामान्य प्रसंगों और धरातलों पर ही करते हैं। यही वजह है कि उनकी निजी और विशेष अनुभूति की कविताओं में भी एक अधिक सामान्य अनुभूति या अनुभव का सामाजिक परिवेश जुड़ा होता है और सामान्यीकृत अनुभूति या अनुभव की कविताओं में भी अधिक निजी और व्यक्तिगत अनुभूति और परिवेश संयुक्त होता है। राजनीति हो या सामाजिक उद्वेलन या हरकतों की कविताएं, शमशेर की निजी व्यक्तिगत प्रतिक्रिया किसी बाहरी घटना के प्रति या बाहरी परिस्थिति के प्रति भी ऐसी ही होती है जिसमें दूसरे तमाम लोग शामिल और साझीदार हो सकते हैं। उनकी कविता आत्मालाप नहीं है। उसमें न केवल सामाजिक हिस्सेदारी के मानवीय ऊष्मा भरे नक्श हैं बल्कि वह सामाजिक हिस्सेदारी का खुला निमंत्रण भी लिये हुए है। 'सागर तट' के प्रतीकवादी ढांचे के बावजूद इतने आत्मीय पारिवारिक बिम्बों के जरिये मानवीय स्पर्शानुभूति की जो ऊष्मा है, वही उसे प्रतीकवादी दुर्बोधता से भी हटा-उठा देती है। शमशेर सारे कलात्मक प्रतीकवादी सौन्दर्यवादी रुझानों के बावजूद मानवीय प्रतिबद्धता के कवि हैं। वे शब्द के माध्यम से स्वयं अपना तथा दूसरों का भावात्मक परिष्कार करने में सक्षम हैं और ऐसा वे एक ही स्तर पर नहीं करते; विभिन्न और अन्तर्विरोधी स्तरों के साथ अपनी संश्लिष्ट और समावेशी रचनात्मकता से बहुआयामी बोध और स्तरों पर करते हैं। इसीलिए उनमें काव्यबोध के ही अनेक स्तर नहीं, संवेदनाओं की भी अनेकस्तरीयता मिलती है। ये स्तर उनकी काव्य प्रवृत्तियों से लेकर मनोदशाओं तक फैले हुए हैं।

एक स्तर पर उनकी कविताएं विशेष मनोदशाओं की कविताएं हैं जिनका आस्वाद भी उसी मनोदशा की अपेक्षा करता है। इस मनोदशा में शब्द, प्रतीक, बिम्ब सब तिरोहित हो जाते हैं—शेष रहता है तो उस मनोदशा का अन्तर्राग। 'कबूतरों ने एक ग़ज़ल गुनगुनायी, मैं समझ न सका, रदीफ काफिये क्या थे, इतना ख़फ़ीफ़, इतना हल्का, इतना मीठा उनका दर्द।'··· सामान्य और साधारण का यह वैभव ही उन्हें इतना विनम्र और समर्पित बना देता है कि 'टूटी हुई बिखरी हुई चाय, की दली हुई, पांव के नीचे पत्तियां, मेरी कविता' का कोमल निरीह आत्मीय और अप्रतिम भाव जगाती हैं। यह भाव आत्मालाप की घनीभूत संवेदना भी जगाता है। यह आत्मालाप उपजता है मानवीय स्थिति और नियति की घनीभूत और उत्तेजित अनुभूति में। यह कवि की निजता का लोक है जिसमें निजी उपलब्धि की बेचैन तलाश होती है। निजता का यह लोक अकेलेपन का भी है: 'खुश हूं कि अकेला हूं, कोई पास नहीं है—, बजुज़ एक सुराही के, बजुज़ एक चटाई के, बजुज़ एक जरा से आकाश के, जो मेरा पड़ोसी है, मेरी छत पर, बजुज़ जो उसके तुम होतीं, मगर हो फिर भी, यहीं कहीं अजब तौर से'··· इस अकेलेपन में मानवीय असहायता भी है और ऐसी अनेक मनोदशाएं शमशेर में हैं; लेकिन यह अकेलापन व्यक्तिवादी कवियों का मार्बिड अकेलापन नहीं है और न ही शमशेर इस अकेलेपन का उत्सव मनाते हैं। इस अकेलेपन में भी सुराही, चटाई, आकाश और 'उसकी' याद की जो पूंजी है, वही इसे एक मानवीय उपस्थिति और ऊष्मा से भर रही है। इस अकेलेपन को कवि ने अपनी नियति नहीं मान लिया है। इस अनुभूति के: 'तल में भी प्रश्न है: नमक जैसे मैले संगमर्मर का बादल मेरी, आंखों में कब तक गड़ता-घुलता जायेगा···' और इस प्रश्न के छोर पर उत्तर की संभावनाएं झिलमिलाती हैं। इस झिलमिलाहट में ही मेरा प्यार और विचार और अध्ययन, संसार से बिल्कुल मिलता-जुलता लगता है और अकेलेपन की प्रकृति बदल जाती है। यह ठीक है कि निराशा और पराजय, दर्द और घुटन की घनीभूत मनोदशाएं शमशेर में हैं: 'खत्म हमदर्दी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खत्म साथियों का साथ, रात आयेगी मूंदने सबको···' की 'केवल तम की अनुभूति और ज़र्द आहें हैं, ज़र्द है यह शाम, सभी राहें हैं नाकाम'···की नाउम्मीदी है···'सांस रोक बढ़ा सीधा करने अपना मुंदा हुआ पात्र, पर सुबह-सुबह फैला जो मन का विषाद, वह कहां ढंका गया',··· का अवसाद भी है लेकिन साथ ही गहरा ऊंचा काला कहीं एक भार ऐसा ही कहीं···एक भार का वह एहसास भी है जहां बकौल ग़ालिब 'मुनहसिर मरने पे हो जिसकी उम्मीद, नाउम्मीदी उसकी देखा चाहिए' के बावजूद एक रचनात्मक तनाव और मानवीय उपस्थिति का एहसास होता है। लेकिन बावजूद अपने तनाव के वह ऊब पैदा नहीं करती। वहां ऊब पैदा होगी शायद, असावधान और गैरजागरूक पाठक के लिए जो कविता को मनबहलाव के लिए पढ़ते हैं लेकिन जिनकी आस्था आज भी कविता में है, कविता में जिनकी निष्ठा आज भी बची हुई है वे शमशेर की कविता में आज के आदमी को उसकी सारी साधारणताओं में; सम्पूर्णता से उभरता हुआ पाएंगे···रोजमर्रा हरकतों के सामान्यीकृत प्रसंगों में समग्र मानवीय वैशिष्ट्य के साथ। इस अनात्मीकृत और अमानवीयकृत संसार में आदमी को उसकी इंसानियत की सिम्तों और अंदरूनी शक्लों से वाकिफ कराती है यह कविता।

प्रकृति का संश्लिष्ट रूपांतरण

मसलन पहले प्रकृति को ही लें। शमशेर के काव्य व्यक्तित्व में प्रकृति का प्रसंग उसी तरह आदिम और बुनियादी है जैसे कि पंत के काव्य में। पंत की ही तरह : **उन्होंने पहाड़ों, बादलों, आसमान और वृक्षों को बहुत नज़दीक से देखा है :** और प्रकृति के कोमल और शान्त रूपों के प्रति उनमें वही ललक और ममत्त्व का भाव है लेकिन पंत की तरह उनमें प्रकृति से अपने दार्शनिक भावों की निष्पत्ति की बेताबी नहीं है। उनका रवैया उसके प्रति उतना रूमानी भी नहीं है। वे छायावादियों की तरह 'प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य' में किसी आध्यात्मिक सत्ता का छाया-आभास नहीं पाते, वहां प्रकृति पूरी तरह स्वतंत्र और अपनी ही सत्ता में मौजूद है। निराला की तरह प्रकृति के गत्यात्मक और विराट चित्र भी उनमें प्राप्त होते हैं लेकिन 'पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश' के इन चित्रों में शमशेर प्रकृति पर अपने मन के भावों का रंग नहीं चढ़ाते और न ही निराला की तरह प्रकृति का मानवीयकरण करते हैं। उसके 'पावन विशेष सौन्दर्य' को अपनी मनोदशाओं की व्यंजना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने की समकालीन रूढ़ि भी उनमें नहीं मिलती। वहां प्रकृति माध्यम नहीं है। वह स्वतंत्र और निरपेक्ष सत्ता में : **सुन्दरता के पलछिन होने वाले अवतार** : का साक्षात्कार प्रस्तुत करती है। इस साक्षात्कार में, अनुभवों के दौरान उनकी अपनी निजी मनोरेखा और रूपच्छवि उजागर हो जाती हो तो अलग बात है, प्रकृति उन्हीं का जरिया होकर नहीं रह जाती। 'क्षीण नीले बादलों में, पीले थके पंखों से जाती संध्या' भी किसी अवसाद या रुग्ण मनःस्थिति का चित्र नहीं देती। 'आसमान का पीला अंधेरा' प्रकृतिगति के एक प्रभाववादी चित्र को ही व्यंजित करता है जिसमें विशेष संवेदनाघात के स्वर ही झंकृत होते हैं। उसमें प्रकृति के रंगों पर स्वानुभूति का रंग नहीं चढ़ाया गया है वहां तो प्रकृति और स्वानुभूति का कुशल संयोजन भर है। प्रभात और सूर्यास्त के चित्रों में जो रंग संस्कार हैं वे किसी छायावादी रूमानी कलाकार के नहीं, प्रकृति की मौजूदगी में विशुद्ध संवेदनाघातों की उद्दीप्त प्रेरणा से ही आये हैं। ये उनके गतिमय चित्रों के साथ अन्तर्लयित हैं। प्रकृति के उनके गत्यात्मक चित्र और निराला के समानधर्मा चित्रों की तुलना कीजिए तो बात साफ हो जायेगी। निराला के गतिचित्रों में क्रियाओं का मानवीय आसंग ही केन्द्रीय है,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शमशेर मानवीय आसंगों से उसे मुक्त रखते हैं इसीलिए अपनी संरचना में वे अतियथार्थवादी और प्रभाववादी लगते हैं। मसलन निराला की 'संध्या' से शमशेर की 'ऊषा' की तुलना कीजिए। निराला में 'संध्या' मानवीकृत है, वह सुन्दरी है। शमशेर की ऊषा मानवीकृत नहीं है कि चित्र उतना ही गतिमय और क्रिया सम्पन्न है। निराला संध्या के दर्शक हैं, शमशेर ऊषा को अपने अन्दर घुला सके हैं। ऐन्द्रिय संवेदनाओं और घरेलू बिम्बों – राख से लीपा हुआ चौका, लाल केसर से धुली बहुत काली सिल, स्लेट पर मली हुई लाल खड़िया चाक — में मानवीय आसंगों की मौजूदगी के बावजूद वहां मानवीय क्रिया व्यापारों की प्रधानता नहीं है। 'नील जल में हिल रही गोर झिमिल देह' का बिम्ब भी सिर्फ अपनी मानसिक प्रतिक्रिया का इज़हार है...एक घनीभूत प्रभाव का पार्श्वबिम्ब जिसमें सौन्दर्यानुभव की समग्रता दिपदिपा उठी है। निराला की तरह यहां गति और परिवेश बाहरी झंकृतियों और ध्वनियों से नहीं—चुप-चुप आदि से—नहीं, बल्कि रंगच्छटाओं के अन्तरण से उभरता है। लगता है हम ऊषा को अधिक सुन्दर, अधिक हेतुक और अधिक प्रभावशाली होकर अवतरित होते देखते हैं फिर भी वह ऊषा की प्रतिकृति नहीं, ऊषा ही होती है जो हमारे भीतर अवतरित होती जाती है। निराला की 'प्रिय यामिनी जागी' से भी इसकी तुलना कीजिए तो इसमें प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता का सम्मान मिलेगा कि ऊषा यहां नायिका नहीं है, उस पर दार्शनिक और आध्यात्मिक भाव का आरोप नहीं है। पंत की तरह शमशेर में प्रकृति के माधुर्य, कोमलता और शक्ति के रूप-आकार हैं तो साथ ही निराला की तरह विराट का संयोजन भी। 'ऊषा' का प्रसंग तो है ही, 'एक पीली शाम' भी अपनी संवेदना में कोमल, मधुर, शान्त ही कही जायेगी लेकिन 'सागरतट' में जो समन्दर की पछाड़, तोड़ती है हाड़ तट का···उसके पर्यवसान में भी चांदनी की उंगलियां चंचल, क्रोशिये से बुन रही थीं, चपल, फेन, झालर बेल···। यह मानो निराला के शक्ति और छवि के मिलन का हास-मंगल-मय, प्राणमय संचार है और शमशेर कम से कम प्रकृति के प्रसंग में पंत और निराला का मंगलमय मिलन कहे जा सकते हैं। सागर तट की विराटता का आत्मी-पर्यवसान, शक्ति का छवि में रूपान्तरण है या कि शक्ति और छवि की वागर्थ सम्पृक्ति है। वहां विराट भी सहज, रोज़मर्रा निकटता और पारिवारिकता में घुलामिला लगता है। निराला के विराट चित्रों की तरह शमशेर के विराट चित्र आक्रांत और पराभूत नहीं करते, वे आदमी के मन के बहुत करीब सरककर इस विराट से मनुष्य के आत्मीय संवाद और साक्षात्कार को उजागर करते हैं। 'एक आदमी दो पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता, पूरब से पश्चिम को एक कदम से नापता, बढ़ रहा है', में विराटता के साथ ही 'कितनी ऊंची घासें चांद तारों को छूने-छूने को हैं' की सहज मानवीयता भी 'लघुता में विराटता' का बोध व्यंजित करती हैं। 'अपनी शाम को सुबह से मिलाता हुआ' में यह चित्र अधिक यथार्थजीवी और आत्मीय हो जाता है। उतना ही जितना कि समन्दर की पछाड़, चांदनी की उंगलियां क्रोशिए से फेन झालर बेल बुनते हुए में है। यह प्रकृति से मानवीय संबंधों के बदले हुए सरगम का भी नतीजा है। इन संबंधों में न तो छायावादी रूमानी दृष्टि की प्रकृति की विराटता के आगे मनुष्य की नगण्यता अथवा उसके व्यक्त किन्तु सूक्ष्म सौन्दर्य में किसी आध्यात्मिक सत्ता का भान वाला बोध है और न ही औद्योगीकृत आधुनिकीकरण को नकारकर प्रकृति की ओर वापसी का उलार आधुनिकवाद है बल्कि एक अधिक संतुलित समावेशी और आधुनिक दृष्टिकोण है। 'मैंने शाम से पूछा, या शाम ने मुझसे पूछा, इन बातों का मतलब, मैंने कहा, शाम ने मुझसे कहा, राग अपना है'···यहां प्रकृति और मैं दोनों का अपना राग, एक सह-अनुभूति का राग है जिसमें दोनों एक-दूसरे में घुलते-से हैं। प्रकृति से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मनुष्य के संवाद की यह स्थिति अन्ततः जिस तादात्म्य में पर्यवसित होती है उसमें दोनों में से किसी की सत्ता का पर्यवसान किसी दूसरे में नहीं होता बल्कि दोनों की सत्तायें एक तीसरी सत्ता की रचना करती हैं। उस प्रतिसंसार की तरह जिसका ज़िक्र हम ऊपर कर आये हैं। उस राग की तरह जिसमें विभिन्न स्वर संवेदन मिलकर एक समग्र राग का अवतरण करते हैं। इसीलिए प्रकृति शमशेर के यहां चित्रित नहीं होती, प्रस्तुत होती है। वह अनुभव का उन्मेष करती है, मनःस्थितियों का प्रतिबिम्ब नहीं होती। मनुष्य की अनुभव यात्रा यहां प्रकृति में होती है और प्रकृति की अवतार यात्रा मनुष्य के अन्दर : 'एक नीला आइना, बेठोस-सी यह चांदनी, और अन्दर चल रहा हूं मैं, उसी के महातल के मौन में···' यह यात्रा अनुभव की विशिष्टता के लिहाज से ही नहीं, अनुभव के विस्तार के लिहाज़ से भी उल्लेखनीय है, 'जिसके एक पल के ओट में है कुल जहान···'

इसीलिए शमशेर की प्रकृतिपरक कवितायें भी सुन्दरता को अवतरित करती हैं। हमारे-आपके भीतर इस अवतार को आप चाहें तो वैष्णव भावना की पारम्परिक आस्था से जोड़ लीजिए, चाहें तो उसे आधुनिक यथार्थ के सापेक्ष्य स्वभाव से, फ़र्क इससे कविता के सौंदर्य में नहीं पड़ता। आपके संस्कारों की पहचान अलबत्ता हो जाती है। कविता तो प्रकृति के इस अवतार की मौजूदगी में महज़ अनुभव-परिवेश का विस्तार करती है और उसे अनन्त और अपार तक उठा देती है। यह अनन्त और अपार छायावादी आध्यात्मिकता का अनन्त और अपार नहीं है, महज़ अनुभव के काल-क्षण का देश के विस्तार में फैलाव है। अनुभव की सीमाओं का अतिक्रमण है जहां वह व्यक्तिगत अनुभव ही नहीं रह जाता, एक जातीय और अन्तर्जातीय अनुभूति में रूपांतरित हो जाता है। अनुभव का यह विस्तार प्रकृति की व्यापकता को समेट लेने की स्पृहा से सम्भव होता है। यह व्यापकता देश की ही नहीं काल की भी होती है और उसके लिए रहस्यमय, अलौकिक या अतिप्राकृत तत्त्व जिम्मेदार नहीं होते बल्कि प्रकृति का बोध ही उस व्यापकता और विस्तार की अनुभूति जगाता है। इसीलिए विराट भी यहां इतना आत्मीय होकर आता है। विराट बिम्ब प्रकृति का पंत के 'परिवर्तन' में भी है लेकिन वह विराटता इतनी विराट है कि मनुष्य उसके सामने नगण्य और असहाय है जब कि शमशेर में उसको आत्मीय और पारिवारिक आसंग के जरिये मनुष्य का समीपी प्रसंग दे दिया गया है। मनुष्य से प्रकृति का यह समीकरण हिन्दी कविता के आधुनिक परिदृश्य में इसीलिए इतना अद्वितीय है।

प्रेम का समावेशी राग

शमशेर की प्रेम कवितायें भी अपनी उद्दीप्त ऐन्द्रियता, सघन संवेदनाघात और भावगत तटस्थता की वजह से समकालीन परिदृष्य में उल्लेखनीय हैं। वह प्रेम को जितना व्यक्ति का घनीभूत और निजी प्रसंग देते हैं, उतना ही संश्लिष्ट वह सामाजिक और मानवीय संबंधों से भी होता है। शमशेर ने 'दोआब' में लिखा है : **सामाजिक संबंधों का जो सौंदर्य और आकर्षण जीवन के अवरुद्ध द्वार खोलकर व्यक्ति की सब शक्तियों को मुक्त और उल्लासपूर्ण नहीं करता, एक खुली हंसी की चमक-सी उसके अंग-अंग में नहीं भरता, वह बहुत गलत और बीमार चीज है।' शमशेर के लिए प्रेम भी मनुष्य की सब शक्तियों को मुक्त और उल्लासपूर्ण करता है। इसीलिए उनके यहां प्रेम जीवन की एक अनिवार्य प्रासंगिकता में फलीभूत होता है। मुक्तिबोध ने सही कहा है कि : शमशेर मुख्यतः प्रणय जीवन के प्रसंगबद्ध रसवादी कवि हैं। प्रणय जीवन के जितने विविध और कोमल चित्र उन्होंने प्रस्तुत किये हैं उतने किसी नये कवि में नहीं हैं। 'रेडियो पर**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक योरोपीय संगीत सुनकर' में स्वर लहरियों द्वारा उत्तेजित प्रेम की जिस रूमानी संवेदना को प्रस्तुत किया गया है वह अपने घुटते आवेश, मर्म से जलते उच्छ्वास और कभी दर्दनाक फरियादों के क्षण, कभी आंसुओं भरे मौन को मूर्त करती है। है यह संगीत का प्रभाव लेकिन अपनी अवधारणा में यह रूमानी प्रेम ही है। ऐसा रूमानी प्रेम जो अपनी सघनता और मानवीय ऊष्मा में क्लासिकी रूपाकार ग्रहण कर लेता है और उसका संवेदनाघात विशिष्ट अनुभव प्रसंग को रूपायित करता है। प्रभाव की विशिष्टता को सार्वजनीनता का धरातल देकर वह संगीत का स्तर पा लेता है। इसी तरह 'टूटी हुई, बिखरी हुई' प्रेम की अनुभूति से उत्तेजित जिस बिम्ब लोक की रचना करती है, उसमें प्रेम की रूमानी तन्मयता और वेदना के विशेषीकृत अनुभव संवेदन एक सार्वजनीन शक्ल अख्तियार करते हैं। यहां प्रेम की वेदना छायावादी कवियों की तरह दार्शनिक सम्भार लेकर नहीं आती। वह मानवीय तीव्रता में ही इतनी पवित्र और उदात्त लगती है कि किसी भी छायावादी अलंकरण की मोहताज नहीं है। दूसरी वजह यह है कि वह वेदना की अभिव्यक्ति नहीं है, वेदना से निष्कृति है। यहां प्रेम, वेदना और रचनात्मकता जैसे एकाकार हो जाते हैं। यद्यपि केन्द्रीयता यहां भी प्रेम की ऐन्द्रिय और उद्दाम शारीरिक संवेदनाओं की बजाय उसके सहज मानवीय और पारिवारिक रूप की ही है लेकिन एक का निषेध कर दूसरे को केंद्रित और रोशन करने वाली संवेदना के कायल शमशेर नहीं हैं। जहां उनका सांकेतिक बिम्बविधान उस उद्दाम ऐन्द्रियता को कलात्मक बना रहने देता है, वहीं एहसास की शिद्दत का सरोकार उनके भावुक मन को भी यथार्थ जीवन के मार्मिक धरातल पर ही रहने देता है। यह मानवीय सहजता का लोक है जिसमें आपसी समझदारी का सरोकार सामाजिक संबंधों के सौन्दर्य और आकर्षण को उकेरता है। प्रेम का यह प्रतिसंसार जिन रोजमर्रा पारिवारिक अनुभवों से रचा-बसा है, उसमें प्रेम की ऐकान्तिक और मार्बिड अभिव्यक्ति नहीं है। 'प्रेमिका के नाम की छोटी-सी प्यारी-सी तिरछी स्पेलिंग' और 'पिकनिक में उसके दांतों से चिपक जाने वाली दूब के तिनके की नोक' की याद भी संवेदना की एक घनीभूत सिम्फनी की रचना करती है। प्रेम के ये संवेदनाघात भी उतने ही कोमल, शान्त और मधुर हैं जितने प्रकृति के चित्र, इसीलिए यहां प्रेम भी व्यक्तित्व की समृद्धि और उदात्तता से संयुक्त होता है वह तो जैसे 'इसी शरीर से अमर करने वाला' हो जाता है। प्रेम का यह धरातल भी रूमानी और वायवीय हो सकता था, यदि उसमें मनोवैज्ञानिक यथार्थ की दृष्टि न होती। उसके बावजूद भी इस प्रणय संवेदना में जो औदात्य और गरिमा है, वह किसी भी भक्तिकालीन प्रेम अनुभूति की उदात्तता से टक्कर लेती है। और इसके वावजूद वह उतने ही पारिवारिक और आत्मीय और मानवीय प्रसंग की रचना भी करता है।

उर्दू की इश्किया शायरी की अतिशयोक्ति भी यहां आकर स्वभावोक्ति हो जाती है। इसकी संवेदना इतनी स्वभावज और अकृत्रिम अपने रचे गये परिवेश के कारण भी होती है: सुराही, चटाई और पड़ोसी आकाश के जरिये यह प्रेम किसी रूमानी लोक के ताजमहल-सा आभिजात्य नहीं रचता बल्कि हमारे-आपके रोज़मर्रा जीवन-प्रसंगों के भीतर अन्तर्निहित उस घनीभूत मानवीय क्षण को केन्द्रित और रोशन करता है: 'शेर में ही तुमको समाना है अगर, ज़िन्दगी में आओ मुजस्सिम…।' इस प्रेम को रसदशा तक पहुंचने के लिए किसी संचारी-व्यभिचारी भाव की ज़रूरत नहीं। यह अपनी तन्मय गहराई में स्वयं ही पूर्ण है। जो तुम होतीं… की आकांक्षा यहां जरूर है लेकिन उसकी असफलता का विषाद इतना घनीभूत नहीं है कि ज़िन्दगी आंसुओं से तर हो…कि…मगर हो फिर भी… का एहसास लिये यहां और नहीं कोई,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहीं भी…का अन्दाज़ भी मौजूद है। और सबसे बड़ी बात प्रेम की इस विशेष अनुभूति को जितना सार्वजनीन धरातल मिलता है, प्रेम के व्यक्तिगत और निजी अनुभव को जितना देश और काल का विस्तार मिलता है, उतना किसी भी समकालीन प्रेम कविता से मुमकिन नहीं होता। इसकी वजह यह भी है कि उनमें अमूर्त कला के संवेदनाघातों की ऐन्द्रियता है। वे रूप-आकार की समग्रता के बदले एक ऐसी झलक देते हैं जो अपनी सांकेतिकता में भास्वर होती है। वे संवेदनाओं को नाम नहीं देते, वे तो सिर्फ संकेतित करके उसका आह्वान करते हैं और इस तरह कल्पना को कैद से मुक्त कर आकाश में छोड़ देते हैं। 'सूखी भरी झाड़ियों में व्यस्त चलती-फिरती पिंडलियां, इन मरदाना रानों की चमक उनको खूब पसंद…' हो या 'पपड़ीले पत्थर की पीठ पर केंचुली उतारता रहा, लहर जहां कांस में, सिवार में पेट उचकाती-सी, अंडों के छिलके उतारती-सी, हिलती रही लगातार, नशे का खुमार लिये हुए, वहां हवा में, चिनक-चिनक कर मीठा दर्द होता ही रहा' हो…ऐन्द्रियता का यह एहसास सारी 'शारीरिकता' के बावजूद समकालीन 'देह की राजनीति' से अलग और हटकर है। उसमें तो सिर्फ प्रकृति या प्रेम दोनों के प्रसंग में सौन्दर्य के अवतार का प्रभाव-बिम्ब समेटकर एकत्र करने की ही आकांक्षा है। संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं के प्रति इतनी जागरूकता, आंख, कान, नाक, स्पर्श की इतनी उत्तेजित तत्परता अन्यत्र दुर्लभ है। सवाल दरअसल इस सघन ऐन्द्रियता के काव्य-निर्वाह का है। शमशेर में रूमानी ऐन्द्रियता के साथ जो क्लासिकी संयम है, वह निराला के टक्कर का है। 'जुही की कली' और 'न पलटना इधर' को इस प्रसंग में साथ-साथ याद किया जा सकता है। 'जुही की कली' में सघन ऐन्द्रिय व्यापार के बावजूद जितना अमल कोमल प्रभाव है वह एक क्लासिकी संयम का नतीजा है। शमशेर में भी रूमानी संस्कारों का आवेग है और रीतिकाल की मांसलता भी है, उर्दू की इश्किया शायरी की शोखी और लताफत भी है लेकिन इनका संयोग जिस क्लासिकी संयम और लगभग सूफी तन्मयता से होता है वही उन्हें एक मानवीय सघनता भी देता है।

समाज सत्य का मर्म और इतिहास की धड़कन

मानवीय एहसास की शिद्दत और गहराई शमशेर को सामाजिक सत्य, समाज सत्य के मर्म और इतिहास की धड़कन से जोड़ती है और 'कण समूह में मैं हूं मैं केवल, एक कण का विनम्र समर्पण भाव' प्रदान करती है। यही भाव प्रसंग उन्हें स्वस्थ सामाजिक चेतना का भी कवि बनाते हैं। दलितों और शोषितों के प्रति सम-अनुभूति का संस्कार भी उन्हें यहीं मिलता है। इसी संस्कार से उन्हें लगता है: 'ये शाम है कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का/लपक उठी लहू भरी दरातियां/कि आग है धुंआ-धुंआ सुलग रहा/ग्वालियर के मजूर का हृदय…' मजूर के इसी सुलगते हृदय की केन्द्रीय अनुभूति उन्हें जन-जन की मुक्ति और एकता के विश्वास से संयुक्त करती है। 'दैन्य दानव, क्रूर स्थिति, कंगाल बुद्धि, मजूर घर भर, एक जनता का अमर वर, एकता का स्वर, अन्यथा स्वातन्त्र्य इति।' इसी आस्था और विश्वास के सरोकार उन्हें मानव व्यक्ति-तत्त्व की गरिमा के लिए संघर्ष में भागीदारी का एहसास देते हैं। 'नया एक संघर्ष, नयी दुनिया का, नये मूल्यों का, नये मानव का, एशिया का नया मानव उठ रहा है, एक नया युग ला रहा है।' नये मूल्यों, नये मानव और नये युग के प्रति इस संवेदनात्मक सरोकार के कारण ही शमशेर में क्रांति की वह संतुलित वाणी मिलती है जो नारों और सपाट जोशीली कविताओं को एक रचनात्मक संस्कार देती है। देखना है मौन अक्षय वट, क्रांति का एक वृहद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुम्भ, क्रांतिमय निर्माण का, एक वृहद पर्व।' समाज सत्य के इस मर्म को भी शमशेर अपनी भावना, प्रेरणा और संस्कार में ढालकर अपनी निजी उपलब्धि के रूप में पाते हैं। यहां समाज सत्य उनके निजत्व का ही एक अनिवार्य प्रसंग बनता है और उसे प्रत्यक्ष जीवन की धड़कन की तरह अनुभूत करते हैं शमशेर। इतिहास की घटना और सामाजिक उद्वेलन उनकी निबिड़ रचनानुभूति का ही अंग बनकर आती है। मसलन 'सत्यमेव जयते' भी उस घनीभूत पीड़ा से उपजी है जो एक बहुत प्यारे दोस्त से अचानक आघात पाने पर पैदा होती है।·· यद्यपि यह भी एक क्षण विशेष का स्वाभाविक-सा विस्फोट है लेकिन देश की पुरानी संस्कृति और इतिहास के उन स्थायी मूल्यों को भी इसमें याद किया गया है जिनका चीन की संस्कृति ने भी वरण किया है। यहां इतिहास की राजनीतिक घटना भी कवि की अनुभूति का यथार्थ बनकर आती है और विशिष्ट स्वानुभव भी ऐतिहासिक परिवेश और देशकाल की सार्वजनीनता प्राप्त करता है। समाज सत्य के मर्म से समाविष्ट उनकी निजी उपलब्धि भी मानवीय संवेदना और समकालीन यथार्थ से कितनी एकमेक है, इसकी मिसाल है—'टूटी हुई बिखरी हुई कविता···' जो नितान्त आत्मीय और प्रेम के प्रसंगों को उकेरती है लेकिन यहां शोषण का जो बिम्ब उभरता है, वह अपनी मार्मिकता में कवि की सामाजिक जागरूकता और चेतना को भी व्यंजित करता है। हिसाब से अनजान भोले-भाले किसान से महाजन इतना सूद वसूलना चाहता है कि वह पूरे जन्म में भी अदा न कर सके। निबिड़ एकांतिक प्रेम प्रसंग में बाह्य यथार्थ का यह समाज सत्य का मर्म अपनी सेटिंग में ही कितना मार्मिक है! 'प्रेम की पाती बसंता के नाम' अन्तर्मुखी गहरी हताशा से निकलकर आजकल के सामाजिक वैषम्य पर एक करारे व्यंग्य के मूड में लिखी गयी वस्तुपरक कविता है। 'एक आदमी दो पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता' भी हालांकि प्रकृति का विराट चित्र है लेकिन उसमें भी संघर्षशील मानवता का जो प्रतीक पिन्हां है, वह भी शमशेर की इसी सामाजिक चेतना का प्रमाण है। इसमें वैज्ञानिक युग के प्रकृति विजेता आदमी को एक नये मिथक-नायक के रूप में उभारा गया है। कितनी ऊंची घासें चांद तारों को छूने-छूने को हैं···में इस संघर्षशील मनुष्य की विजयाकांक्षा और बेहतर भविष्य का सपना उभरता है। लेकिन 'सीधा नारा' में या 'सातों सागर के पार एकाकीपन से ही मानो हार, एकाकी उठ मुझे पुकारा कई बार' का स्वर मुखर होता है जिसमें अपनी एकाकी अन्तर्गुहा से उठकर सामाजिक संघर्ष में भागीदारी का निश्चय और संकल्प उभरता है। 'शाम होने को हुई' में किसान, कमकर, बाबूलोग और हम, तुम, सब अपार्थिव शिखर छूते हैं, यहां भी आर्थिक वास्तविकता का दांव लगा है जिसे भूलने की कोशिश तो है लेकिन 'शाम निर्धन की न भूलूं' का संकेत इतना सम्भावना भरा है कि शमशेर के प्रसंग में यह कहना कि : समाज सत्य वह है जो हमारे निजत्व के बाहर है, उनकी संवेदना के साथ अन्याय है। यह समाज सत्य की, मर्म की ही पहचान है कि 'ये शाम है' में लहू भरी दरातियां और रोटियां लिये हुए निशान उस राजनीतिक संघर्ष और वर्ग-संघर्ष के निहित आशयों को मूर्त करते हैं। जो लोग इसे सिर्फ एक 'शाम का प्रकृति चित्र समझकर इसमें सच्ची करुणा की सुन्दरता देखते हैं···' वे बिम्बों के संवेदनाघात और कविता की समग्र अन्विति और प्रभावशीलता का जानबूझकर कलावादी भाष्य पेश करना चाहते हैं। इन्हीं लोगों ने शमशेर की प्रगतिशील रचनाओं में समसामयिक घटनाओं और परिस्थितियों के प्रति तीव्र संवेदनशीलता तो देखी मगर उसमें सामाजिक चेतना की अपेक्षा वैयक्तिक सहानुभूति की क्रिया ही उन्हें नज़र आयी। वे भूल गये कि इस सहानुभूति का जन्म ही सामाजिक चेतना में से होता है। फिर यही लोग कविता में नारों की ध्वनि ही अधिक सुनते हैं। यह काव्य को नहीं, अपनी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रुचि को महत्त्व देने वाली आलोचना दृष्टि है। नारे उस संघर्षशील मानवता के जीवन यथार्थ का प्रासंगिक हिस्सा होते हैं जो अपनी जिन्दगी को बेहतर बनाने के दैनन्दिन संघर्ष में लगे हुए हैं। जिस नारे ने दुनिया के एक इतने बड़े हिस्से की शोषित मानवता को जागृत किया उसकी रचनात्मकता किसी भी कलावादी प्रतिमान की मोहताज नहीं है। जो लोग व्यक्तिगत अनुभूति और व्यक्तिगत परिवेश को ही अहमियत देते हैं वे सामाजिक परिवेश से संयुक्त अनुभूति को भी अधिक सामान्य अनुभूति या अनुभव कहकर टालना चाहते हैं। ऐसे ही लोगों को शमशेर की : सामाजिक परिवेश वाली कविताओं में एक आत्मव्यंग्य और आयरनी वाला टोन मिलता है।···वे भूल जाते हैं कि सामाजिक परिवेश की ऐसी कविताओं में भी कवि की व्यक्तिगत अनुभूति और परिवेश न केवल सम्पृक्त है बल्कि उसमें मनुष्य का दुख-दर्द भी व्यापक समाज सत्य के मर्म की निजी उपलब्धि के रूप में रचना रूपान्तरित है। इसीलिए अपने जीवन के एक लम्बे हिस्से तक साम्यवादी आन्दोलन से जुड़े हुए इस कवि-कलाकार की इन सामाजिक परिवेश की कविताओं में एक निश्चित राजनीतिक प्रतिबद्धता और पक्षधरता भी मिलती है···'ये' शाम है' के साथ 'कामरेड रुद्रदत्त की शहादत की पहली वर्षी पर,' तो इसका स्पष्ट ही प्रमाण है। इन्हें राजनीतिक रुझान की कवितायें कहकर टाला नहीं जा सकता। इनमें वास्तवोन्मुख दृष्टि, संवेदनायें और वास्तव का उतना ही संवेदनात्मक ग्रहण है जितना कि शमशेर की प्रकृति और प्रणय की कविताओं में। 'चीन' और 'सत्यमेव जयते' इसकी मिसाल हैं। 'वाम, वाम' वाली कविता में भी एक निश्चित राजनीतिक रुझान व्यक्त होता है लेकिन 'शमशेर की इस तरह की कवितायें ज्यादा सफल नहीं हैं···' कहने वाले लोग सफलता का शायद कलावादी अर्थ ही जानते-समझते हैं। वे भूल जाते हैं कि यहां राजनैतिक रुझान व्यक्त होकर भी वह एक बड़े परिवेश के मसले को छूती हैं। कविता में एक निजी व्यक्तिगत प्रतिक्रिया किसी बाहरी घटना के प्रति या बाहरी परिस्थिति के प्रति ऐसी हो सकती है कि जिसमें दूसरे तमाम लोग भी साझीदार बन सकते हैं और इसे हम तो कविता की सफलता ही कहेंगे। 'ये शाम है' या 'कामरेड रुद्रदत्त', 'चीन' या 'सत्यमेव जयते' इनमें जो व्यक्तिगत निजी प्रतिक्रिया है, क्या वह एक सार्वजनीन भागीदारी से भी समृद्ध नहीं है?···

□

(अगले अंक में जारी)

कहानियां

मासिक चयन

सम्पादक : सत्येन कुमार

४०, न्यू कालोनी, ईदगाह हिल, भोपाल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दो प्रेम कविताएं

गलतफहमी

□ अजित कुमार

आंख में तुम्हारी
लाल डोरे जब सघन हुए—

ऊसर और बंजर
सब सहसा उपवन हुए,
नन्हीं-सी कोयल के पंख
फरफरा उठे,
रोम-रोम कोंपल के उन्नक
थरथरा उठे···

लेकिन उसी क्षण तुमने
आंखों की लाली को
और भी घना किया,
पागल हुए को
पुनः सुस्थिर बना दिया···
प्रेम की नहीं,
वह घृणा की लाल डोर थी,
उजली-सी रात नहीं,
भुतही-सी भोर थी।

बहुत-सी ग़लतफ़हमियां पूरे जीवन भर
होती हैं।

□

पीड़ा

जब झुकीं पलकें तुम्हारी
वक्ष में कम्पन हुआ जब
होंठ पर थकने लगे स्वर
हो गईं तुम खूब कातर···
बंध चली उम्मीद मुझ में—
इस फड़कती मूर्ति के भीतर
प्रतिष्ठित हूं कहीं मैं।
हूं कहीं मैं!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फिर सुनाई कथा तुमने
अन्ध पागल वेग वाली
मथ रही आकांक्षा की…

डूब जब उसमें गईं तुम,
इस व्यथा में छोड़ मुझको—
"मैं नहीं हूं, वहां कोई दूसरा है !"
आह, कोई दूसरा है !

खो गई उम्मीद सारी,
मिट गए रंगीन सपने,
कुछ नहीं हूं मैं तुम्हारे लिए,
सचमुच, कुछ नहीं हूं…

इसी पीड़ा ने बताया—
दूसरा जो, मैं वही, तुम भी वही !
सब कुछ सही है।

इसी अनुभव ने सुझाया—
फ़र्क हो, जो भी, जहां हो…रहे…
लेकिन फ़र्क तो कुछ भी नहीं है।
कुछ नहीं,
तो भी
सही है। □

एक संग्रहणीय कृति

डोगरी लोकगीतों का पद्यमय हिन्दी अनुवाद

थिरके पत्ता पीपल का

संकलन एवं अनुवाद

डॉ० ओम प्रकाश गुप्त

□

जम्मू-कश्मीर में लिखी जा रही आज की पंजाबी
कहानी का महत्त्वपूर्ण संकलन
(हिन्दी में पहली बार)

प्रतिनिधि पंजाबी कहानियां

सम्पादक : रमेश मेहता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निबंध

अनुभव और संप्रेषण के बीच आध्यात्मिक सेतु : एक दृष्टि

□ रतनलाल शांत

सूरदास ने ही नहीं, तकरीबन सब भक्त कवियों ने अपने विशिष्ट अनुभव ('भगवत्प्राप्ति' के अनुभव) को गूंगे का गुड़ बताया, जो समझाना 'असंभव' है, पर यह अजीब बात है कि साथ ही उस अनुभव को समझने-समझाने का सतत प्रयत्न करते रहे। इस प्रयत्न में भाषा का संस्कार होता गया, शब्द बने, उक्तियां गढ़ी गईं, मुहावरे ढले और वाङ्मय सम्पन्न होता गया। ईश्वर की प्राप्ति उन्हें हुई या नहीं, यह वे जानें, पर जो हमको बता गए कि पाया, वह या तो 'नाम' था या 'चरित' या कथावृत्त का कोई मोटिफ सुना-सुनाया अथवा कभी-कभी मनगढ़न्त। अर्थात् हमें वह बताया नहीं जो पा गए, बल्कि वह जो पाए भले न हों, पर बताने योग्य था, समझाया जा सकता था। केवल पाए हुए को बताने की शर्त का पालन करना होता तो कुछ बताना था नहीं क्योंकि यह 'मन-वाणी को अगम अगोचर' था। 'नाम' भी नहीं, 'कथा चरित' तो बिल्कुल नहीं। नाम या कथातत्त्व अगम-अगोचर नहीं। नाम मीरा ने पाया, कबीर ने भी; यद्यपि दोनों के लिए मूल अनुभव 'नाम' नहीं था। सूर-तुलसी ने मूल अनुभव की अपूर्णता को पूरा करने के लिए उसे रूप-रंग से भरा जिससे वह सम्प्रेषण के लिए सरल हो गया, हालांकि वे रूपरंग के भी अनुभव को रूपरंग तक ही सीमित करना नहीं चाहते थे। कवि इनको, इनसे परे जाने का साधन मानकर चले क्योंकि उनका मूलानुभव 'नामातीत' 'गुणातीत' था। 'अतीतत्त्व' की दशा के वर्णन के लिए परम्परापुष्ट रूढ़ियां कैसे सहायक हों इसलिए वर्णन रूढ़ियों के ही माध्यम से हुआ पर एक नये क्लीशे के प्रयोग से इनको संवर्द्धित करके। वह था जो है, जो दृश्य तथा अनुभाव्य है उसका निषेध। अस्वीकृति का स्वर उभरा। वर्तमानत्व का निषेध। यानी कि जो है वह भी नहीं; जो हो सकता है, वह भी नहीं; जो तुम कभी भी कितने मनन के बाद कल्पित कर सकते हो, वह भी नहीं; जिसे ध्येय मानकर तुम वहां पहुंचना चाहो, उससे पहले ही चुक चुके होगे। वह तुम्हारा भी गंतव्य हो, पर वहां पहुंचने से पहले ही गति से बेखबर घिसट रहे हो, तो हो। इसलिए मेरा अनुभव अनुभव के आम अर्थ का निषेध करने वाला है, लेकिन जिसको पाना निषेध द्वारा ही संभव है और अंतःनिषेध के लिए निषेधव्य को समझना-समझाना जरूरी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है···अलौकिक है यानी लौकिक नहीं, यदि तुम लौकिक को ठीक समझ लो तो। और 'लौकिक' क्या है? रूढ़ियों का संकलन मात्र ही तो।

भक्ति का अनुभव हो चाहे करुणा का; चाहे घृणा का, चाहे स्नेह का, काव्यानुभव है तो विशिष्ट होता है। भक्ति का अनुभव, खासतौर पर, अव्याख्येय होने लगता है। अनुभव की परिणति को प्रकट करना असंभव बताया गया। उसका सम्प्रेषण रुद्ध हो गया। जीभ हकलाने लगी। प्रश्न उठता है कि क्या हर विशिष्ट काव्यानुभव सम्प्रेषण के समय लंगड़ाने लगता है, क्योंकि वह विचित्र और अपूर्व होता है? क्या सम्प्रेषण एक वैसा ही कर्म नहीं जैसा अनुभव है? क्या अनुभव-कर्म के अतिमानवीय या परामानवीय होने की संभावना है जबकि सम्प्रेषण हमेशा सांसारिक सीमित साधनों के अधीन रहेगा? ये साधन शब्द, रंग और रेखा होंगे पर अनुभव के साधन अव्याख्येय होंगे? अनुभव अलौकिक हो सकता है पर सम्प्रेषण लौकिक ही रहेगा? अनुभव की अलौकिक स्थिति के समर्थकों ने सम्प्रेषण की भी एक अलौकिक स्थिति बताई है—मौन द्वारा सम्प्रेषण। उलटबांसी के चमत्कार की पुनर्रचना। एक विरोधाभास। मौन अर्थात् भाषण-श्रवण की अनुपस्थिति में ही श्रवण भाषण। यह स्थिति क़रीब वैसी ही है जिसे 'विशफुल थिंकिंग' कहा जा सकता है। कल्पित और इष्ट को घटित बता देना। मन चाही स्थिति की मन चाही निष्पत्ति। मौन संभाषण तथा मौनश्रवण इसी घेरे में पड़ते हैं। पश्चिमी आलोचना में कहे के बीच अनकहा छोड़ देना या ध्वनि का संभावित अर्थ समझने की संभावना एक नवीन तरह के साहित्य की सर्जना मानते हैं। पर वह मौन केवल साधन है, कहे को और उजागर करने का। और वह मौन किसी आध्यात्मिक मुद्रा का मौन नहीं, बल्कि केवल ध्वनि का एक साधन है। 'मौन-साहित्य' में श्रवण-भाषण के उपकरण अर्थात् शब्द की अनुपस्थिति नहीं होती, बल्कि शब्द काफ़ी समर्थित और परिपुष्ट होता है। लिखित या कथित शब्द इतना अर्थगर्भित होता है कि अलिखित की तकरीबन आवश्यकता नहीं रहती। शब्दों के बीच की रिक्तियां बहुत कुछ कह देती हैं।

यह सही है कि अनुभव संश्लिष्ट होता है, क्योंकि प्रभावग्राही मन एक-साथ कई उलझे व्यक्तित्वों का केन्द्र होता है। बाहर से पड़नेवाली छवियां मन की प्राकृतिक तथा अन्य तात्त्विक सरंचना में पड़कर कुछ से कुछ हो जाती हैं और बाहर आने के लिए 'नाम', 'आकार', 'रंग रूप' आदि का माध्यम ढूंढ़ लेती हैं। जब सही माध्यम नहीं मिलता तो सम्प्रेषण की समस्या पैदा हो जाती है। माध्यम न मिलने का यही एक कारण नहीं होता कि खुद माध्यम ही अपूर्ण या अशक्त है, बल्कि अधिकतर संभावना इस बात की होती है कि रचयिता का पर्याप्त मानसिक विकास नहीं हुआ है, उसने भाषा पर पर्याप्त अधिकार नहीं पाया है। माध्यम-भाषा न्यूनता ग्रस्त हो सकती है। एक सामाजिक संस्था होने के कारण भाषा अपना जीवन समाज से पाती है। यदि समाज भौतिक विकास की यात्रा में पिछड़ा रहा तो उसका सांस्कृतिक विकास पिछड़ा रहेगा; क्योंकि सांस्कृतिक विकास (भाषा-साहित्य जिसकी एक कड़ी है) भौतिक विकास के साथ सीधे अनुपात में जुड़ा रहता है। न्यूनता की स्थिति में समर्थ अनुभावक-कवि भाषा को नव संस्कार दे सकता है। यों भी, कोई भी भाषा सर्वथा और सर्वदा के लिए विकसित और पूर्ण नहीं हो सकती क्योंकि समाज की प्रगति का कोई भी चरण अंतिम नहीं हो सकता। हर भाषा नई अभिव्यक्ति-समर्थताओं के अधीन होती है। ऐसा न होता तो विकसित भाषा की कसौटी नए-नए शब्दों की ग्रहणशीलता न होती। इसके लिए और समाजों तथा भाषाओं के साथ उसका सम्पर्क जरूरी होता है। शब्द दूसरी भाषाओं से सीधे आते हैं या रद्दोबदल के साथ। कभी उन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शब्दों की प्रेरणा से ग्राहक भाषा के अपने शब्द सुसंस्कृत हो जाते हैं। इस प्रकार यह एक सामूहिक क्रिया होती है – एक सामाजिक प्रक्रिया।

सम्प्रेषण चाहे मौन भी हो, प्रकृत्या सामाजिक होता है। यह सत्य है कि जो अनुभव व्यक्ति अभिमुखी होने में ही सत्य है, अभिव्यक्ति के समय वह निर्वैयक्तिक होने से ही साबित होता है। अनुभव के स्पष्ट कारण हमारी समझ में नहीं भी आ सकते हैं क्योंकि हमारे बोध की सीमाएं हैं—संश्लिष्ट (या कभी अतार्किक) बाहरी प्रभाव श्रृंखला के कारण। समाज एक 'वायामीडिया' है और जो इसकी स्थिति और प्रभाविता से इनकार करता है—काव्यकर्म की पूरी प्रकृति और प्रक्रिया से ही इनकार करता है। संप्रेषण इस मीडिया के अधीन होता है और यदि अपूर्ण रहा तो कई दोष पैदा होते हैं। बहुत कुछ अनकहा रह जाता है, (अनकहे की विडम्बना पर ही कविता कहने के बावजूद) निष्पत्ति की प्रक्रिया अधूरी रह जाती है। यानी कि जो अनुभव वैयक्तिक था, सामूहिक संपर्क के अभाव में लक्ष्य भ्रष्ट हो जाता है। लक्ष्यभ्रष्टता को साधनाभ्रष्टता से अभिहित किया गया है और इसका अभिशाप जन्मजन्मान्तर तक बताया गया है। सम्प्रेषण-अशक्यता की छाया भी रचना को घेरे रहती है। साधनाभ्रष्ट विकलांग-जन्म लेता बताया गया है – शरीर या मन से विकलांग। रचना के अपूर्ण सम्प्रेषण से ग्रस्त मन भी अप्रासंगिक हो जाता है—'अनर्गल' और खुद रचना दुरूह।

अनुभव की 'मनवाणी को अगम अगोचर' वाली स्थिति केवल कहने की है, क्योंकि ऐसा कहकर भी उस स्थिति की व्याख्या या मात्र अभिव्यक्ति के लिए 'रूप रंग जाति जुगति' के साधनों का सहारा लिया जाता है। नहीं तो फिर ध्येय या लक्ष्य में समा जाने की बात चलती है। ध्येय के साथ एकात्म होने की बात। मूल अनुभव के साथ अभेद होने की स्थिति। अभेद वाला अंश अपने लिए होता है या नहीं, यह विवादास्पद है पर इतना सही है कि वह किसी और के लिए नहीं होता। इस प्रसंग में भारतीय आचार्यों की मान्यता का प्रमाण प्रस्तुत किया जाता है। मगर इन आचार्यों की उक्ति की एक और व्याख्या संभव है। काव्यानंद को 'ब्रह्मानंद-सहोदर' कहकर शायद आचार्यों ने इसकी स्वतंत्र सत्ता पर ज़ोर दिया। इसे ब्रह्मानंद ही कहा जाता तो नऊज़ाबिल्लाह ब्रह्मानंद की तौहीन नहीं हो जाती। 'सहोदरत्व' ने कल्पना के लिए बहुत कुछ छोड़ दिया। समानता और तुल्यता से और कई संभव अर्थ लगाए जा सकते हैं और रचना प्रक्रिया विकसित तथा प्रसरित हो जाती है। अगर अनुभव अनुभावक को संप्रेषण की जिम्मेवारी से मुक्त करता है, तो वह अनुभव नहीं, उस अनुभव का खुद कोई आधार नहीं, वह स्वयं स्पष्ट नहीं। अनुभव भ्रूण है तो अभिव्यक्ति जन्म। जन्म से मुक्ति की स्थिति में (या जन्म से निरपेक्ष रहने की स्थिति में, क्योंकि उपर्युक्त प्रमेय (हाइपाथिसिस) अनुभव को स्वयं सिद्ध मानता है) अनुभव नहीं ही होगा। उसका कोई अस्तित्व प्राक्कल्पित नहीं किया जा सकता। जन्म से मुक्ति मरण में संभव है। अनुभव की संप्रेषण-निरपेक्षता अनुभव की अकाल मृत्यु होगी। यह अजीब असंभव प्रमेय है, क्योंकि इसमें अनुभव के उपकरण (मन) के ही अनस्तित्व का संकेत निहित है। मृत्यु का अनुभव अलग चीज़ है पर अनुभव की मृत्यु ? वह तो मात्र कहने की बात है और यह कहने की भी नहीं। अनुभव की मृत्यु से बचने की बात अस्तित्ववादी अति-वादियों ने भी कही थी, यद्यपि मृत्यु के अनुभव को जीने में वे एक खास मज़ा मानते थे—जिसे 'वरण की स्वतंत्रता' कहकर वास्तव में मृत्यु का एक दर्शन ही बना डाला उन्होंने। यह दृष्टव्य है कि इस दर्शन की आधारभूमि एक विशिष्ट सामयिक समाज था जो दूसरे विश्वयुद्ध से बिद्ध था और अतः सब स्थितियों के लिए सच नहीं हो सकता। □

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

मेरी मां कहा करती थी····

□ चन्द्रकांता

कितना तो भरा बैठा है आसमान ! काला सायेबान ज्यों तना हो सिरों के ऊपर। उस पर कनफोड़ घड़घड़ाहट और बिजली की कौंध ! धार बनकर बरसेगा मेघ, जरूर आकाश-पाताल एक कर देगा। सीधे गले तक लपक आते हैं बिजली के हाथ। ऐसा लगे ज्यों देवकी की जायी अभी-अभी पापी कंस के हाथ से छूट कर आकाश में वास करने गई हो। खूंखार, गुस्साई ! सोना देखकर तो और भी बेकाबू हो जाती है। लड़की की जात हुई न ?

यों तो सोना-ओना पहनने का ज़माना अब रहा नहीं। आग लगी है सोने के भाव में और अब जिसके पास धरा हो पुराना पहले का, वह पहनने से भी कतराये है। क्या पता कब कौन कान-गला काट डाले एकाध तोले के लालच में। एक तोले भर का डेजहोरू है कान में और गले में डेड़-एक तोले की चेन। बस, इन्हीं को ब्लाउज-कुरते के भीतर ढकना-लुकाना पड़े है। सोने की बड़ी आशिक जो हुई यह छोकरी।

ठठाक···ठठठक ! कैसी तो दहलाने वाली गड़गड़ाहट उठी है आकाश के हिये में। धरती का कलेजा कांप उठे है। हे राम ! हे खीर भवानी ! रक्षा कर ! किसी जंगल-पहाड़ पर जाकर गाज गिरा। इधर मेरे जायों पर अपना साया कर।

उठूं, बन्द ही कर लूं खिड़की। पर्दे-अर्दे से ढक लूं कांच। शीशा तोड़ आंख फोड़ती है सीधी तीर तलवार-सी भीतर घुसकर। नन्हा सोया है, अभी-अभी। रो-रोकर बेहाल हुआ जा रहा था। अब मांयें आफिसों में जायेंगी चाकरियां करने तो रोना ही हुआ न बालों को। मैं कहां तक जान खपाऊं ? घर भी देखूं, बच्चे भी। एक हाथ से साग चुनूं, दाल बीनूं, पकाऊं-रांधूं और दूसरे से नन्हें के लिए फेरेक्स-एरेक्स बनाऊं, गीले पोतड़े-पातड़े सम्हालूं। मुंडू तो चार बर्तन करने में ही दिन गंवाता है। हाट-बजार भेजो तो समझो गया हाथ से। पड़ोस के रमेश-गनेश के साथ इस उस घर की खोटी-खरी करनी हुई, इसको क्या मिले, उसको कितना, इतना ही नहीं, फलां की सासू कैसी, अलां की बहू कैसी ? रसोईघर से लेकर बेडरूम तक की खोज खबर रखते हैं ये चार दिन के छोकरे। हवा लगी है इन्हें भी ज़माने की। ऊपर से अपने ये तो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उम्र भर मिज़ाज के राजा-रईस ही रहे। ज़रा-सी ऊंच-नीच हुई कि खोपड़ी पर अखरोट फोड़ दें। पेंशन मिले दस साल हो गए, पर न आदतें बदलीं, न तेवर। ज़रा सम्भाल लेते बच्चे को दसेक मिनट, तो मैं भी चार काम निपटा देती पलक झपकते। मगर ये रीं-रीं रिरियाहट बजती रहे कान में तो, कमलावती से काम नहीं होने का ! यह आज की बात नहीं, भले पूछो किसी से भी ! कोई जो कहे अब उम्र ज्यादा हो गई। जब नाज़ों पली, कच्ची कली, चार भाइयों में अकेली बहन ने, मोती में नगीना कहती थी मां, पांच हाथ घूंघट काढ़े, गिरती-सम्हलती मां की देहरी लांघी थी, तब भी यही हाल था। याद है मुझे, ज्यों कल की बात हो। तुलसी भाभी और बिमला रानी नाते-रिश्तेदारों से ठसाठस भरे कमरे में "थोद तुली रोनि दामान व्यसिये" गाती घुंघरू जड़े दामन सम्हालने की हिदायतें दे रही थीं और नई बहू के गृह प्रवेश पर मंगल गीत गा रही थीं, मेरा नन्हा-सा पांव सलमे-सितारे जड़े दामन में उलझ गया था। तुम्बकनारी की सदा और आठ-दस जनियों की ऊंची सदाओं से मैं घबरा गई थी। दस आवाजें एक साथ सुनती तो कलेजा धड़कने लगता था मेरा ! भला हो स्वर्गवासी बबलाल का, जो बांह पकड़कर थाम लिया था मुझे, नहीं तो देहरी पर गिर कर गोड़-घुटना तोड़ ही देती उस दिन।

थी भी क्या मैं ? चौदह साल की दुबली नाज़ुक, छुई-मुई की डाल समझो। आजकल की धींगड़ियों जैसी पच्चीस-छब्बीस की थोड़े ही थी जो दुल्हनें किसी भी तरे न लगें। सासू जी मेरी ने तो, जो मेरा घूंघट खोला तो टकटकी बांधे देखती रहीं जाने कितनी देर। मेरे हाथ में धरी मुंह दिखाई की सोने की मुहर लेना भी भूल गई। अब क्या कहूं ? अपने मुंह मियां मिट्ठू वाली बात हो जाती है। पर सच बात तो वही जो उसने बाद में मुहल्ले की दस जनियों बीच कही। घूंघट में ढके मुंदे चेहरे पर जो पसीना छितर आया था, सो सासू मां बोली—ओस भीगा कमलफूल है मेरी बहू ! बहरहाल ! वह बात जाने दो। मैं ज़िक्र कर रही थी शोर-शराबे का। मुझसे ऊंचे बोल सहे नहीं जाते थे। पर वह कहते हैं न कि लड़की कितनी भी लाड़ली हो, बहू बनकर दस जनियों की उल्टी-सीधी सुनने की हक़दार हो जाती है। खानमाज़ि (लाड़ली) लड़की के लाड़ निभे हैं भला सासरे में ? हमारे ज़माने में तो नहीं। अब मेरा ही देखो, कभी छाज-छलनी उठाई मां के घर ? फटकना-बीनना जानती थी किस चिड़िया का नाम है ? पैर उठाती तो मां अतलस बिछा देती। दूध-खीर की कटोरी लेकर बबा आगे-पीछे फिरा करते। अब इधर के हाल तो दूसरे ही थे। अब क्या-क्या कहूं ? सासू मां मुंह अंधेरे मंदिर जातीं और लौटते वक्त, मंदिर के घाट से महदजू से, निके-निके गुरन (छोटी मछलियां) भी ले आतीं। उन्हें पसंद जो थे। एक बार मुझसे कहा—इन्हें साफ कर ले। मेरे तो डर से हाथ पैर फूल गए। फूलने ही हुए न ? वह निकी-निकी हज़ार जनियां फुदक-फुदक परात में नाचने लगें तो मैं दस गज़ दूर उछल न जाती ? मेरी हालत खराब ! न मुंह खोले बने न हाथ चलाए बने। पर सासू अच्छी थी मेरी। समझ गई, इसे आदत नहीं है काम धाम करने की। आगे से आप ही कर लेती बाकी मैं तो रहती थी पास में। चीज-बस्त थमाती, नज़र-गुज़र रखती। सो जो जैसे भी वह पकाती-रांधती, मैं आप ही सीख गई, बल्कि उससे बेहतर पकवान बनाना सीख गई। चाह हो तो राह निकल आए है। अब आज की बहूरानियों को देखो, घर ज्यों काटने को दौड़े है, यों दीन-जहान घूम आयेंगी। अंग्रेजी-फारसी बोलती फिरेंगी। जेठ हो, ससुर हो या ऐरा-गैरा ! सब जानने समझने की उम्र जो पा गई होती हैं। यों घर का काम करेंगी पर कैसे ? तोबा-तोबा ! कलेजा जलता है देखकर। ठास-पटास दो-चार बर्तन खनकाये रसोई में, प्रेशर कुकर में बेस्वाद उबला-सुबला खाना बना दिया चटोपट्ट ! और हो गई रसोई ! अब दलिये को पारिज और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शोरबे को सूप बता देने से पकाने-खाने का ढब थोड़े आता है ? ढंग से चीज़ तलो भूनो, तबीयत से मसाला पीस कर छौंक बघार लो—वह तो होगा नहीं। कुछ कहो तो जवाब हाज़िर। इससे यह बिटामिन जाया होगा, उससे यह प्रोटीन बरबाद होगा। हमने तो यह विटामिन इटामिन न खाये, तो भी उनसे अच्छी भली देह है हरि कृपा से। ये सींकिये पहलवान जब देखो विटामिन प्रोटीन ही गाते रहें राम भजन सा और सेहत देखो तो लगे हाल ही में बीमारी से उठे हैं। अब इन्हें तो वही पुरानी आदत है खाने की। मीट-मुर्ग की बात जाने भी दें, वह गृहस्थ में कौन रोज़ पकता है, पर वह निका-निका कानुल-वोस्तहाख भी पकाना हुआ तो तल भून कर, हींग बघार वरी मसाला डाल जब मक्खन की बट्टी-सा नरम साग तैयार होता तो हरियाली देखकर ही तबियत हरी हो जाती। चटनी भर साग चटा कर थाली भर भात खा लो भले, अपना पेट इजाज़त दे तो ! इधर अब बहूरानियां राम रसोई बनाती हैं कि पानी में तैरता है पीला मुरझाया साग, ज्यों अपने भाग को रो रहा हो। जाने क्या कर देती हैं कि देखकर ही भूख मर जाती है। सच मानो तो, मैं तो खाने का स्वाद ही भूल गई हूं अब। जैसे तैसे दो कौर निगलने हुए इस पापी पेट की खातिर। अब स्वाद-वाद क्या देखें। यही किट-किट करते हैं खाने को लेकर। बोलते हैं पित्त बढ़ता है, पानी-पानी का स्वाद लगता है। समझो मेरा काम बढ़ा देते हैं। बहुओं की तो चान्दी समझो। स्वाद न लगे, अपने हाथ से पका लो। इसमें वे भी खुश ! टंटा छूटा उनका तो ! यों जबसे बहुयें आई हैं मैं ज़्यादा दखल नहीं देती ! क्या करूं, सास की ज़ात यों भी बदनाम ज़ात हुई सीधा कहो तो उल्टा समझेंगी। चार अच्छर जो पढ़ी हुई हैं, सो अपनी इज्ज़त-आबरू को ही थामना भला। यों पढ़ाई की कहो तो मैं भी कोई अनपढ़ नहीं। आठ जमात पास की हूं उस जमाने में, जब शहर में मिडिल पास लड़कियां, यों अंगुलियों पर गिनी जाती थीं। पर हम तो लाज हया के परदे में ही रहीं। इधर तो समझो राम ही मालिक है। अब बड़ी को ही देखो। तीनेक बेटियों के बाद जो पहली बहू घर में लाई तो क्या-क्या अरमान न थे मन में। आपके नहीं होंगे ?

आहा ! कमर तनिक सीधी कर लूं ? तख्ता हुई जा रही है निगोड़ी। निक्की रानी ! ज़रा दो घूंसे मार दे तबीयत से। ये हड्डियों का दर्द तो जान ही निकाले दे रहा है। लगे, ज्यों कुत्ते खींच रहे हों बोटी-बोटी !

हां, तो क्या कह रही थी मैं ? लड़कियों की ब्याह-शादी की बात ! सोचिए ज़रा, तीन लड़कियां ब्याह कर किस मां-बाप की कमर सीधी रहती है आज के ज़माने में ? आग जो लगी है हर चीज़ बस्त में। सच कहूं तो दो हज़ार रुपये तोला सोना तो मैंने मुन्नी-चुन्नी के वक्त न लिया। उस वक्त सस्ता भाव था, पर घर में था। मेरे पिता ने साठेक तोला बांध कर भेजा था मुझे। चफकल, कमरबन्द और बाज़ूबन्द में ही दो लड़कियां ब्याह दीं। बीस-बीस तोला समझो, दो में बांट दिया। तीसरी के वक्त दसेक तोला ले लिया। उस वक्त भी छः सौ रुपया तोले का भाव था। पर, आगे की भी सोचनी हुई न ? मेरी मां कहा करती थी, "पुत्तर, रुपया-पैसा हो या चांदी, सोना अपने पास बचाकर रखना। उसी से बाल-बच्चे भी दबकर रहे हैं। कंगलों को तो अपने जाये नहीं पूछते, बहूरानियों की तो बात ही छोड़ दो…" सो नन्नी रानी की भी सोचती थी। इसी से रक्खा बचाकर कुछ-कुछ पास में।

अब, समझो कुदरत की करनी ! जन्म जिसे लेना हुआ उसे कौन रोके ? नन्दू के पूरे ग्यारह साल बाद आई यह नन्नी रानी। मांगी तो हमने न थी। चौथी लड़की भला चाहेगा भी कौन ? बदलने को तो कहे हैं लोग ज़माना बदल गया। पर दहेज-अहेज के मामले में तो हमने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सौ से सवा सौ होते देखा ज़माने को। लाख कानून सुनायें आप हमें, पर हम वही मानेंगे न जो इन आंखों से देखें। हमारे रिश्ते-नाते में ही लड़कियों को बीस-तीस तोले सोना देने का चलन है आज भी। बड़े-उच्चों की बात मैं नहीं कर रही। उनकी तो देने दिलाने की कोई हदें नहीं। वह मेरे छोटे भैया बद्री ने क्या किया? ओवरसियर है वह। अपनी तीसरी बेटी विजी, जानते तो हो आप, वही जो खादी की साड़ी भी पहने तो आंखें चुंधिया आयें, उसे पूरे पच्चीस तोले के गहने दिये। पच्चीस-तीस साड़ियां, क्या कहें तनशोई, कांचीवरम, वह सब जो आजकल देते हैं। पश्मीने के दो शाल, दो हाथ की कढ़ाई वाले, आलओवर, पश्मीने की साड़ी-वाड़ी। अब पहने भले न, पर देनी तो हुई न! विजी के दूल्हे को सगाई पर जो दिया सो दिया ही, उससे पहले ओबराय पैलेस होटल घुमाया, पहलगाम ले गए तो रोलेक्स घड़ी बांध दी साले साहब ने! और जो अब इधर रीत बन गई फरनीचर, फ्रिज, रंगीन टी० वी० देने की। वो सब सामान शादी से पहले ट्रक में भर कर पहुंचाया विजी के ससुराल! ऊपर से, मैंने पूछा न पूछा, पर नन्दबाबू की बहू कह रही थी, पूरे बीस हज़ार नकदी भी दी है। उसके बिना भला चले है खाते-पीते घरों में आजकल?

अब आप कहो सुधार-उधार की बातें तो कमलावती कैसे पचायेगी? बोलो तो? कल ही ये कह रहे थे कि उधर तमिलनाडू के किसी गांव में, क्या कहें कोई कोलर जात के लोग जन्मते ही लड़कियों का गला टीप देते हैं। सुला देते हैं कुछ खिला-खुलू कर। मायें आप ही! यह कहकर कि जो उम्र भर रोयें कपाल पर हाथ धर कर सो एक बार ही चीख मार कर रो लें और मुक्त हो जायें। इसी लेन-देन के मारे हो रहा है यह सब! यह आज की बात है। करेगा कोई विश्वास? यों बड़ी चांद-तारों पर पहुंचने की बातें करो पर लड़की आखिर तो रहेगी लड़की ज़ात ही। गरीब आदमी भी सोना-पैसा मांगे है, तो होगा यही। कानून-आनून क्या करेगा इसमें?

यह तो मेरा ही हिया है कि सिर माथे लगा लिया जो कुछ भी बहुयें ले आईं। मुंह खोल कर पूछना तो दूर, सांस तक रोक दी अपनी। न तो यह बड़ी वाली क्या लाई मायके से? आपसे छिपा है कुछ? सब्ब किस्मत का लेखा है। क्या-क्या सपने देखे थे बड़के के लिए। फारेन में रहा है लड़का। अच्छा कमाता खाता है। इसे कोई भी सेठ महाजन अपनी रूपवती बेटी देकर अपने भाग सराहता। आये नहीं थे कई रिश्ते? वो कंट्रेक्टर रैना दान-दहेज में जो देता सो दे ही देता, उसके अलावा एक बस दे रहा था सगाई में। वो तो मेरी बेटी के कान भर दिए किसी जलनखोरी ने। सही थोड़े जाय किसी से दूसरे की भलाई-बड़ाई? मेरी बड़की बेटी मना कर गई, नहीं मां, वो लोग लड़की को लाते ही दूल्हे के साथ भेजने की गारंटी चाहते हैं। अब बताओ, लड़की की शादी हुई नहीं कि दूल्हे पर कब्जा जमाने की तरकीबें सोची जा रही हैं। पट्टे लिखवाये जा रहे हैं! वाह रे ज़माने, तू कहां से कहां पहुंच गया? आज के दूल्हे क्या आकाश से गिरते हैं कि आते ही दुल्हन उठा कर बटुवे में डाल दे और डोरी खींच कर जेब के हवाले कर दे? अरे, किसी मां-बाप ने तो जना है उस बेटे को, उनका कोई भी अधिकार नहीं बनता? अब आते ही सिरहाने की मैना सुरताल निकाल कर जाने कौन-सा राग अलापेगी कि लड़का मां-बाप भाई-बहन, सभी से नाते तोड़, भेड़ बनकर बीबी के पीछे-पीछे मिमियाता जाय। आते ही पल्लू से बांध देंगी, ऊपर से नाक में नकेल भी डाल देती हैं आज की पढ़ी-लिखी छोकरियां। इसी डर से बड़की ने मना किया था कंट्रेक्टर रैना को। पर हुआ क्या? कढ़ाही से निकले चूल्हे में गिरे। बम्बई-दिल्ली में पली-बढ़ी लड़की लाये। बाप का नाम सुना था बड़ा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रूप-रंग में तो उन्नीस ही है, सुना था, पर सोचा, कार-बंगला दे देंगे तो चलो निभ जायेगी। पर वही ऊंची दुकान और फीका पकवान वाली बात हुई। मेरा यूसुफ जैसा लड़का जाने लड़की में क्या देखकर लट्टू हो गया। ऐसी तो कोई जुलेखा न लगी हमें। क्या कहें ! उन लोगों ने भी कम चालाकी न की हम सीधे-सादों के साथ। कच्ची मछली परोस दी और ऊपर से तुर्रा यह कि गले में फंस क्यों गई ?

अब मैं तो भाग्य का खेल समझकर चुप लगा गई। वह कहनी हुई न "दे दे भाल, क्या करे गोपाल।" बड़की बिटिया ने कहा एक बार भाभी से कि वह अपने भाई के लिए परी-सी लड़की चाहती थी। अब समझो तो गलत क्या कहा ? पर बहू को तो ज्यों तत्ता अंगार छू गया। चमक के बोली, "किसने रोका था ? मैं इस घर में आने को तरस तो नहीं रही थी। आपके बेटे ने खुद चुना है मुझे···" जाने क्या-क्या बोल सुना गई। अब लिहाज़-शर्म जिसने भून खाई, उससे क्या कहे कोई ? अपनी इज्जत-आबरू आप ही थामनी हुई कि नहीं। मैं तो यों भी कुछ बोलती नहीं। पड़ोसिनें तक कहती हैं, कमलावती तो मुंह में दही जमाये बैठी है। भला सीधी उंगली से घी निकलता है कभी ? जरा ढेला-पत्थर मार दिया कर। आखिर अपना ही फल का पेड़ है। तुम्हारा हक बनता है। पर मैंने तो हाथ झाड़ लिये समझो अब बहू जैसी मिली सो अपने भाग ! पर बेटे का तो कायापलट न होना था न ? आखिर इसी मां का दूध पिया है उसने। नौ महीने संभाला है इसी मां ने जान के साथ लगा कर। पेट में आते ही तपस्या करवा गया मां से। कसम ले लो जो नौ महीने नौ तोले अन्न भी गया हो पेट में। गले में ज्यों रेत फंसी रहती थी। जब भी कुछ खाती तो उलट देती थी। सूखकर कांटा हो गई थी मैं। वो तो खैर, मैं मां हुई सो सहना भी हुआ पर ये बहन-भाई, सुख-दुख के साथी एकदम पराये कैसे हो गए, एक बीवी के लाते ही ? हम तो यही जानें कि बीवियां मिलें दसियों पर मां-बाप दूसरे न मिलें। उनका ऋण उम्र भर तो क्या, मर कर भी न चुके ! पर नयी पौध को यह अक्ल-बुद्धि की बात कौन समझावे ? जब अपने पेट के जाये मुंह मोड़ लेंगे तभी मां-बाप की पीर भी समझ आएगी !

नहीं, दोष मेरे लाल का नहीं। वह तो सीधा है जन्म से। नहीं तो इस जादूगरनी के चक्कर में क्यों फंसता ? नौकरी जब से की, तभी से पूरी तनख्वाह मेरे हाथ में थमा दिया करता था। मैं ही उसे खर्चे-पानी के लिए कुछ रुपये उठा के देती, सो देती, उसने तो मुंह खोलकर कभी मांगा नहीं, फिर बाहर चला गया तो भी न बदला। जब भी घर आता तो क्या-क्या न चीज उठा लाता हमारे लिए ? मेरे तो रसोई के बर्तनों से लेकर कपड़े-लत्ते, मिक्सी-उक्सी तक सब फॉरेन का ही है घर में। समझो, पहन-ओढ़कर हम थक जाते, पर जब से बहू रानी आयी है घर में, कसम ले लो जो ढंग की एक जापानी साड़ी भी ले आयी हो। छुटके ने भाई से एक वी० सी० आर० मांगा था। ले देता समझकर कि छोटा भाई है। भाई ही तो हाथ-पैर होता है। पर वो कहा है न – "बोय बेयिस पुशिपनाह, बोय बेयिस दुश्मनाह"—देखते-देखते भाई-भाई का दुश्मन हो गया, बीवी रानी के आते ही। पहले स्कूटर लेकर दिया, कहा, साईकल पर कॉलिज जाते टांगें दुःखती होंगी। अब कहता है, "दस हजार ड्यूटी देनी पड़ती, इतना बचता नहीं, उतना होता नहीं। मुन्नी आ गई है। उसका भी सोचना है···" अब, यह सब बहाने हैं सो तो सभी समझें। चिड़ी की टांग जितनी मुन्नी का खर्चा ही कितना ? देखो, सांस टिकी तो आगे क्या कमाओगे नहीं ? जो अभी से ब्याह की चिन्ता सताने लगी। जरूर बीवी रानी ने सिखाया-पढ़ाया है, कहा होगा अब खुद कमाता है भाई तो तुम क्यों हैरान होते हो। नकचढ़ों की जायी है न ? नाम बड़े दर्शन छोटे वाले लोग ! डायरेक्टर-मनेजर होंगे अपने घर के, इधर तो कंट्रेक्टर-ठेकेदार छोड़ो, क्लर्क

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तक लाखों के वारे-न्यारे करते हैं बेटियों की शादियों में। हम उन लड़के वालों में नहीं जो लड़की के बाप की ऊंची कुर्सी के रोब में आ जायें। आखिर हमने भी तीन-तीन बेटियां ब्याही हैं, लड़के वालों के नाज उठाये हैं, ऊंच-नीच सुनी-सही है। बड़की के सासरे वालों ने अभी तक मेरी नाक में दम करके रखा है। आते हैं तो राजा-महाराजाओं की-सी कद्र चाहते हैं। तीज-त्यौहार पर आज भी जैसा जुड़े, नेग देती ही रहती हूं। यह सब क्या बहूरानी नहीं देखती ?

छोटे भाई की शादी में बड़के ने सोने का एक जड़ाऊ सेट दिया, दो कड़े और चार-छः तनशोई बनारसी साड़ियां। कौन-सी बहन का ब्याह रचवाया है ? अब बहू भात में तीसेक हजार खर्च किए होटल में, तो क्या वह बड़े भाई का फर्ज नहीं बनता ? उसकी शान नहीं बढ़ती इसमें ? सच्ची कहूं तो बड़ी कुढ़ती है कि छोटी को क्यों करते हैं।

छोटी बहू के आगे-पीछे न देखूं तो क्या करूं ? आप ही कहो ! वह तो मेरे संग साथ रहने वाली हुई। हारी-बीमारी में उसी का भरोसा है। बड़ी ने तो देश निकाला ही पसंद कर लिया। उस पर क्या आस-उम्मीद रखूं ? छोटी दिन भर दफ्तर में खटती है, थक-टूट भी जाती होगी। मैं न देखूं तो कौन देखेगा ? बड़ी चार दिन आए साल दो साल में तो, धूप-घाम में लौटी देवरानी को शर्बत का गिलास थमाने में भी अपनी हेठी समझती है। नाक नीची होती है जाने। मैं क्या समझूं नहीं भीतर की बात ? अभी परसों ही खाना खाकर उठे तो मेज़ पर छोटी ने अपनी थाली रख छोड़ी, ध्यान नहीं रहा होगा। क्या हुआ जो बड़ी ने चार थालियों के साथ उसकी भी थाली उठा ली। कुछ घटा गया उसका ? ऊपर से बड़के से झगड़ा भी करवाया। उसी ने पढ़ाया है नहीं तो वह वैसी बात करता ? कहा—"देखता हूं मां, तेरी छोटी बहू का दिमाग खराब होने लगा है। छोटे-बड़े का लिहाज़ नहीं मानती।" अब इसमें कैसी बेलिहाज़ी की बात हुई। बड़ी घर आई है तो चारेक काम ज़्यादा करने से घिस थोड़ी जाएगी। इस-उस से कहलवाती है कि मैं छोटी की सेवा करती हूं, उसकी नाज़बरदारी नहीं करती। अब मैं लाली बहुओं की जालीदार परान्दियां देखूं कि घर-गृहस्थी की रास सम्हालूं ? बदलते-बदलते कहां पहुंच गया ज़माना ! देखो एक हम थे रोज़ घंटा भर सास के पैर दाबते थे, आंख में आंख डालकर कभी बात नहीं की। एक ये हैं कि सासू जी से सेवा भी करायें और नाज़ नखरे भी उठवायें !

एक बात और भी है सच कहूं तो। छोटी वाली दान-दहेज भी लाई है घर में। वह भी देखना हुआ न। ट्रक भर कर सामान आया। यों है तो बी० ए० पास पर बड़ी की एम० ए०, पी-एच० डी० से मैं क्या मांगूं ? छोटा भाग्यशाली है। उसे मिलना भी चाहिए था। यों तो बड़ी को भी दस-पंद्रह हज़ार दिये थे फर्नीचर-अर्नीचर के वास्ते। पर क्या दस-पंद्रह हज़ार में आता इतना फर्नीचर ? डबल बेड, डाइनिंग टेबल, सोफा, स्टील की अलमारी, फ्रिज-इज। यों मेरा क्या है। सास-ससुर यों ही बदनाम बेचारे। दिया अपने ही बेटी-दामाद को। मेरा कौन-सा हक़ बनता है इस्तेमाल करने का ? पर दिल में तसल्ली रहे है कि नहीं ? बेटे की गृहस्थी बन रही है, इससे ज्यादा माता-पिता को चाहिए भी क्या ?

यह तो आप से बतिया कर जी ज़रा हल्का कर रही हूं, न तो अब बोलना-बतियाना भी भूल गई हूं। कौन किसकी सुनता है आजकल के ज़माने में ? एक ग़म थोड़े लगा है जान को। गृहस्थ का जंजाल समझो। बड़ी को तो व्रत-अनुष्ठान के दिन सुच्चे-झूठे की तमीज़ भी नहीं। अब देस बाहर रहने से आदमी अपने संस्कार थोड़े भूलता है ! मेरी सासू चतुर्मास के व्रत करती थी। मैं हाथ बांधे खड़ी रहती थी सेवा टहल को। पर अब ? राम भजो जी। सुच्ची थाली सामने ला दें तो वही कृपा समझो ! अपने घूमने-फिरने से फुरसत मिले तब न ! इसकी पार्टी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसकी पिकनिक चलते ही रहते हैं आए दिन। चार दिन घर में खायें तो होटलों में खाने के लिए फफूंदी उठती है। चिकन, सूप, फ्राई फिश और वह जो चले हैं नूडल्ज़-ऊडल्ज़, हमें तो न रुचे हैं। केंचुवे से लगे हैं मरे। हमें घर का दाल-भात ही भला। बहुएं पैसे की कद्र नहीं करतीं। हम तो समझें औरत घर की बरकत होती है, जो लकड़हारे को भी राजा-रईस बना दे, सुनी तो होगी वह कथा। इधर तो बड़ों के काम झंझट लगे हैं। ठीक है अब ज़माना बदल गया। मैं कब नाराज़ हूं इस बात से। पर अपना धर्म-कर्म तो न भूले आदमी। खैर, छोड़ो, मुझे क्या फर्क पड़ता है। ग़म तो यही है कि अपना जाया पराया हो गया। उधर बंबई में फ्लैट ले लिया। यह न हुआ, इसी घर के ऊपर दूसरी मंजिल चढ़वाता। दोनों भाई मिल-बांटकर रहते-खाते। बनाया तो उसी ने यह घर भी था। पर तब भेदभाव जन्मा न था मन में। यह सब बीबी रानी की सलाह है और उसके मां-बाप की। कल को देश लौटोगे तो रहोगे अपना अलग घर बसाकर, अपनों से दूर। बेटा मेरा भी बेपेंदे का लोटा। जिधर लुढ़का दो, लुढ़केगा। कितना सहे आदमी? अब देखो नौकरी का बहाना लेकर पड़ा है परदेश में। घर वाले पराये हो गए। पहले हर माह मां-बाबू के पास रकमें भेजता था बिला नागा। अब सऽऽब छोड़ दिया। सोचता होगा अब छोटा भाई कमाता है, क्यों न करे। कुछ बोलो तो कहता है पहले इतना किया, उसका क्या हुआ। साल दो साल में मेहमानों की तरह आता है और मुझी पर धौंस जमाता है। पैसे भेजे, घर पेंट कराया। छत टपक रही थी, टिन-शिन छवाया। उसका कमरा रह गया। पैसे कम पड़ गए तो मेरा क्या कसूर? आग जो लगी है हर चीज़ में। मैं क्या न चाहती उसका कमरा भी रंगवा लूं? मैंने कहा, भेजा होता एक मुश्त पैसा तो तुम्हारा भी कमरा पुतवा देती। बस जी, गुस्सा गया, "मेरा ही कमरा क्यों रह गया? जबकि घर के छः कमरों में पुताई हुई?" अब मैं कैसे समझाऊं, भैया, तू तो साल-दो साल में महीना भर आए रहने को। बाकी जन तो इधर ही रहने-बसने वाले हुए। पर पैसा उसका था सो बोल सुना गया।

उसका तो दिमाग ही फिरा दिया बीबीरानी ने। ऐसा कायापलट हुआ कि पहचाना नहीं जा रहा। मां-बाप किसी के रहते हैं सदा, जो उसके रहेंगे? आपके-हमारे रहे? क्या पता कितने दिन का अन्न-जल है। आए दिन हाड़-गोड़ दुखते रहते हैं। कभी दिल में ज्यों धुनक-धुनक रुई धुनता है कोई। बीमारियां भी तो नयी-नयी फैल गई हैं आजकल। ये तो ब्लडप्रेशर के मरीज ही हैं। खाने-पीने में भी दस परहेज लगे रहते हैं। ये सब लड़का नहीं सोचेगा तो कौन सोचेगा? अब इन ढाई दिन के चिड़ी-चिरौटों के पीछे सत्तर साल के माई-बाप तो छोड़ने नहीं हुए न? आप ही कहो! वो तो यही सोचे कि बहुत किया, अब क्या करना है। इतना दिया, उतना भेजा। वह कहां गया? यह हिसाब-किताब पढ़ी-लिखी जोरू ही समझाती है। पर हमने भी तो दुनिया देखी है, और ऊपर वाले ने चाहा तो अभी दस-बीस बरस और देखेंगे। हमारे भी दस तरे के लेन-देन हैं। उम्र भर किया। अब क्या आखिरी वक्त में हाथ खींच लें? नाते-रिश्तेदारी नहीं है? दुनियादारी नहीं है? जीते-जी संन्यास तो नहीं लिया जाता न? यों खानी तो दो रोटी ही हुई पर क्या पता उम्र कितनी खिंच जाय? फिर किसके आगे हाथ फैलायें? मेरी स्वर्गवासी मां ठीक ही कहती थी, "बेटी! जीते-जी अपना आसन न छोड़ना! ठनठन गोपाल को अपनी आल-औलाद भी न पूछे, आज के जमाने में। वो सात पूतों की मां कुत्तों का भोजन बन गई थी, सुना होगा।" इधर तो दो ही हैं। अब आप ही कहो, रखती न मैं वक्त रहते अपना दिमाग दुरुस्त, तो सड़क पर डेरा डालने की नौबत न आती? गोपाल के भरोसे रहती तो जो कुछ भाल में था वह मिलता?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कलियुग का स्वभाव है जी, और क्या कहें। मनों को बांट देता है, तेरा-मेरा करके ! न तो क्या तेरा और क्या मेरा। आप ज्ञानी हो जानते हो, आखिर तो सऽऽब रैन बसेरा ही है ! बस, वही दो गज़ कपड़ा मांगे आदमी अंत में।

वो गजर की आवाज़ आ रही दिखे···हां ! पांच बज गया लगे। नन्हा जग रहा होगा। इसकी मां भी आ रही होगी। चलूं, इसका दूध-शूध तैयार करूं। चाय का पानी भी रख आऊं, इन्हें तलब उठी होगी। मुंडू तो बाहर कहीं कंचे खेल रहा होगा, आपसे दो बतियां करके हिया हल्का कर लिया, बाकी जान है तो सौ जंजाल समझो। मरने की भी फ़ुरसत नहीं। वो कहा है न, मरती, पर घर किसके हवाले करूं ? हां ! यों किस घर में खटराग नहीं है ?

बाहर आसमान कुछ साफ हो गया है। चलती हूं नन्हें के लंगोट-अंगोट धूप में डाल देती हूं। बाकी, मां खीरभवानी तुम्हारा माथा ऊंचा रखे···अरे ! चली गई लगे है···बोला भी नहीं···

ऊँह ! आज भला किसे फ़ुरसत है घड़ी-पल मिल-बैठकर दो बोल कहने-सुनने की। अब नये को क्या दोष दें, पुराने का ही हाल देखो ! मेरी मां कहा करती थी··· □

वर्तमान

साहित्य

सम्पादक : धनंजय, विभूति नारायणसिंह

७५, बाघंबरी हाउसिंग स्कीम

अल्लापुर, इलाहाबाद

□

विपाशा

सम्पादक : तुलसी रमण

हि० प्र० भाषा विभाग, शिमला

□

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हास्य-व्यंग्य

पत्र-मित्र

□ रवीन्द्र नाथ त्यागी

मुझे खत लिखने से इतनी चिढ़ है कि खुदा न खास्ता, यदि कभी मैं इस देश के डाक विभाग का मंत्री या सचिव हो गया तो लिफ़ाफ़ों वग़ैरह के दाम इतने बढ़ा दूंगा कि लोग बाग जो हैं वे चिट्ठी लिखना हमेशा के लिए भूल जाएंगे। और यदि कोई बाई फिर भी कुमारी शकुन्तला या दमयंती के अंदाज़ में पत्र लिखने की मुद्रा में आएगी तो स्थिति यह होगी कि वह अपना प्रेम-पत्र या तो किसी कबूतर, हंस या कुत्ते के सहारे भिजवाएगी या फिर प्रेमी के हाथ में उसे खुद ही सौंपकर आएगी। जितनी देर प्रेमी पत्र बांचेगा, उतनी देर बालिका जो है वह कहीं आस पास ही किसी लतागुल्म के सहारे विश्राम करेगी ताकि प्रेमी को यदि कोई शंका वग़ैरह हो तो उसका तत्काल समाधान किया जा सके या यदि प्रेमी पत्र का लिखित उत्तर देना चाहे तो वह भी लगे हाथों साथ ही वापिस लाया जा सके। जो लोग हंस, कबूतर, कुत्ते या खुद का प्रयोग इस निमित्त नहीं करना चाहते वे कालिदास के यक्ष की भांति मेघ वग़ैरह के हाथ अपना संदेश भेजेंगे। बहरहाल, कुछ भी होगा, मगर यह नहीं होगा कि बिना किसी कसूर के डाकिया नाम का प्राणी आपके बरामदे में आए और चिट्ठियों का एक पुलिंदा आपको पकड़ा जाए। मैं पूर्व-जन्म के तो नहीं, मगर इस जन्म के पापों को याद करता हूं और न चाहते हुए भी चिट्ठियों के उस बंडल को खोलता हूं। कभी-कभी कोई रंगीन लिफ़ाफ़ा होता है तो उसके खोलने के लिए बेचैन भी हो जाता हूं क्योंकि हो सकता है कोई हसीन और विधवा युवती अपनी असीम संपत्ति के साथ खाकसार की शरण में आना चाहती हो। पर ऐसा कभी हुआ नहीं। रंगीन लिफ़ाफ़ों में भी पुराने बिल ही निकले जिन्हें न जाने कितने वर्षों से मैंने अदा नहीं किया और जिन्हें मैं न जाने कितने वर्षों तक अभी और अदा नहीं करूंगा। बाकी सारी चिट्ठियां वही रूटीन किस्म की होती हैं। किसी चिट्ठी के साथ कोई घटिया किस्म का संपादक मेरी बढ़िया किस्म की रचना को वापस करता है तो किसी चिट्ठी में कोई बढ़िया किस्म का सम्पादक मेरी एक घटिया किस्म की रचना की मांग करता है। कहीं कोई लेखक मेरी पुस्तकों का पूरा सेट मुफ्त मांगता है ताकि वह उन पर ठीक उसी तरह खोज कर सके जैसे कि कभी कोलम्बस नाम के इंसान ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारत नाम के देश की खोज की थी तो कहीं कोई नया लेखक किसी परिचर्चा के लिए मेरे विचार और फ़ोटो मांगता है ताकि वह गरीब खुद किसी उम्दा अखबार में छप सके। वैसे अखबारों में छपने का मुझे इतना मोह है कि उसके सामने मैं क्या भोजन और क्या बाथरूम—दोनों को भूल जाता हूं पर परिचर्चा में हिस्सा लेना मुझे अच्छा नहीं लगता। एक तो नये लेखकों का प्रकाश में आना वैसे ही खतरनाक ठहरा और यह तो बहुत ही बड़ी हिमाकत होगी कि उन्हें यह अवसर दिया जाए कि वे जमे हुए लेखकों के ऊपर उन्हीं को सीढ़ी बनाकर चढ़ें। जहां तक फ़ोटो का प्रश्न है, स्थिति यह है कि जब कोई ऐसा सवाल करता है तो मुझे लगता है कि वह मेरा मज़ाक उड़ा रहा है। खुदा ने जो सूरत हमें बख्शी है, वह जब हमें खुद ही पसंद नहीं तो पता नहीं दूसरों को कैसे पसन्द आएगी ? वह तो हम ही हैं कि 'सादा जीवन, उच्च विचार' वाले मॉटो में विश्वास रखते हुए, इसी सूरत को पता नहीं कब से बर्दाश्त करते चले आ रहे हैं। कोई-कोई पत्र ऐसा आता है कि पढ़कर दया आती है। ये वे पत्र हैं जिनमें कोई लेखक अच्छा लिखने के लिए खाकसार की सलाह मांगता है। जब मुझे खुद ही अच्छा लिखना नहीं आया तो मैं इन्हें क्या सलाह दे सकता हूं ? अरे भाई, सलाह ही लेनी है तो किसी बड़े लेखक से लो और बर्नार्ड शॉ, मार्क ट्वेन और वुडहाउस वगैरह के साथ पत्र-व्यवहार करो। ये लेखक वे हैं जो मर कर भी अमर हैं और इस कारण तुम्हारे ख़त का जवाब कब्रिस्तान से भेजेंगे।

पत्रों के बाद अगर मुझे किसी दूसरी चीज़ से चिढ है तो वह मित्र नाम का पक्षी है। दोस्तों का मैं हमेशा दुश्मन रहा। आप ही बताइए कि इस खुदगर्ज़ दुनिया में सच्चा दोस्त कहां मिलेगा ? वे दिन गए जब हातिमताई अपने दोस्त के लिए हुस्न बानू के सात सवालों का जवाब पता नहीं कहां-कहां से हथेली पर जान रखकर लाता था। इन दिनों या तो हातिमताई मिलेगा ही नहीं और अगर मिल भी गया तो इस किस्म का मिलेगा कि हुस्नबानू को खुद भगाकर ले जायगा। जहां तक वक्त काटने का प्रश्न है, स्थिति यह है कि मुझे अपना खुद का ही सत्संग काफ़ी प्यारा लगता है और उसके लिए मुझे कभी भी दोस्तों की ज़रूरत महसूस नहीं हुई। दोस्त आते हैं तो मुझे लगता है जैसे कोई तूफ़ान आ गया है। कोई माई का लाल मेरी किताबों की कतार खराब करता है तो कोई दोस्त मेरी निजी बीवी को मेरे ही सामने इस तरह देखता है जैसे कभी विश्वामित्र ने मेनका या तिलोत्तमा को देखा होगा। कोई मित्र-रत्न काव्य पाठ करता है तो दूसरा सुहृदवर तलत महमूद की आवाज में सूरदास का पद गाता है। यहां मैं इतना ज़रूर बता दूं कि सूरदास के पदों को गज़ल या कव्वाली की तरह गाने के लिए जो प्रतिभा चाहिए वह बहुत ही सीमित लोगों के पास पायी जाती है। मैं जंभाई लेता हूं और कभी-कभी सो भी जाता हूं पर कला की जो प्रगति है वह लगातार जारी रहती है। भर्तृहरि के अनुसार इंसान का दोस्त सिर्फ़ एक अदद होना चाहिए (एको मित्रः भूपतिर्वा यतिर्वा) और इधर हम हैं कि 'मुझे मेरे दोस्तों से बचाओ' शीर्षक प्रख्यात व्यंग्य लेख लिखने वाले उर्दू लेखक के शब्दों में हर वक्त दोस्तों की भीड़ से घिरे रहते हैं। खुदा करे, इन सबको काला बुखार या हैज़ा ले जाए।

एक मैं हूं जो पत्रों का भी दुश्मन हूं और मित्रों का भी और एक वे लोग हैं जो 'पत्र-मित्र' नामक आंदोलन को आगे बढ़ा रहे हैं। दूसरे शब्दों में कुआं भी आपका और खाई भी आपकी। इच्छानुसार दोनों स्थानों पर विश्राम कीजिए। इस आंदोलन के समर्थकों की कृपा से पिछले वर्ष कोई पांच करोड़ पत्र-मित्र इस संसार में थे। कहते हैं कि यह सिलसिला सन् उन्नीस सौ छब्बीस में हंगरी नाम के किसी देश से प्रारम्भ हुआ था और धीरे धीरे स्थिति यह होने जा रही है कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हममें से शायद ही कोई इस विपत्ति से बच पाए। और तुर्रा यह है कि इस आंदोलन के समर्थकों का कहना है कि पत्र-मैत्री एक साहित्यिक विधा है और ऐसी विधा है कि इसके बिना रवीन्द्रनाथ ठाकुर के राष्ट्रगीत के अंतिम भाग में वर्णित सपने के पूरे होने की कोई आशा नहीं। वह अंतिम पद (पूरब पश्चिम आसे, तव सिंहासन पासे, प्रेम द्वार है गाथा) कवि ने जान-बूझकर अंतिम रखा था क्योंकि वे जानते थे कि ऐसे सपने कभी सच्चे नहीं निकला करते। बहरहाल, पत्र-मित्रों के बारे में जितनी जानकारी मुझे मिली है उससे तीन बातें जाहिर होती हैं जो कि इस आंदोलन के खोखलेपन को उजागर करती हैं। बात क्रम संख्या एक तो यह है कि पत्र-मित्रों की आयु प्रायः पंद्रह से इक्कीस वर्ष के भीतर होती है जो कि एकदम उचित है। बेवकूफी के काम करने की जो सुविधा इस आयु में होती है वह बाद में कभी प्राप्त नहीं होती। बात क्रम संख्या दो यह है कि इस आंदोलन में वे लड़कियां ज्यादा जोश से हिस्सा ले रही हैं जिनकी आयु ज्यादा है। यह बात भी समझ में आती है क्योंकि प्रेम नहीं मिला तो चलो प्रेमपत्र से ही गुज़ारा किया जाए। अंतिम और सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ज्यादातर पत्र-मित्र ऐसे हैं जिन्होंने एक-दूसरे को कभी नहीं देखा। मेरे ख्याल में यदि ये लोग एक-दूसरे को देख लेते तो चिट्ठी डालने की गुस्ताखी कभी नहीं करते। मेरे एक साथी को पत्रों के माध्यम से एकबार एक कन्या से इतना प्रेम हो गया था कि वे उसके विरह में आत्महत्या करना चाहते थे। इत्तफाक से एक दिन जब इनका उस बालिका से साक्षात्कार हो गया तो स्थिति यह रही कि वे आत्महत्या के बजाय हत्या की योजना बनाने लगे। कन्या क्या थी, ताड़का और शूर्पणखा दोनों का सजिल्द संस्करण थी। इसी तरह एक और अज़ीज़ थे जो एकबार खतों के सिलसिले में एक लड़की के इश्क में गिरफ़्तार हो गए थे। जब मुलाकात हुई तो वे इनकी मरहूम अम्मां की उम्र की निकलीं। वह तो अच्छा हुआ कि इन साहब के वालिद ने उससे शादी कर ली वर्ना वह बदनामी होती कि इन्हें शहर छोड़ना पड़ता। वह दिन है और आज का दिन है, मेरे उस दोस्त ने सिवाय लार्ड चेस्टर-फ़ील्ड के, किसी और के खत नहीं पढ़े।

हाल ही में मोरारजी देसाई ने जिमी कार्टर को अपना पत्र-मित्र बताया था। भगवान, दोनों की आत्मा को शान्ति दे। बहरहाल, कम से कम मैं तो इस घुड़दौड़ में कभी शामिल नहीं होऊंगा। यह घुड़दौड़ क्या, घोड़ों की कोई भी दौड़ मुझे कभी पसन्द नहीं आई। हां, अलबत्ता अगर गधों की कोई दौड़ हो तो उसमें हिस्सा लेना मैं अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानूंगा। तब तक मैं लड़कियों से और उनकी माताओं से कोई भी व्यवहार करने को तैयार हूं पर पत्र-व्यवहार नहीं। स्त्री जाति के साथ लिखित कार्यवाही तो कभी करनी ही नहीं चाहिए। उनके साथ कुछ भी कर लो, मगर पत्र-व्यवहार हर्गिज़ मत करो।

अंत में चलकर मैं सारे समझदार साथियों से अपील करता हूं कि इस 'पत्र-मित्र आंदोलन' को खत्म करने के लिए ठोस कदम उठाएं। अरे, लिखना ही है तो कुछ और लिखो, यह चिट्ठी काहे लिखते हो! बनाना ही है तो कुछ और बनाओ, ये दोस्त क्यों बनाते हो? क्या तुम्हारी ज़िंदगी में करने के लिए बेवकूफ़ी का कोई और काम वाकई नहीं बचा? □

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कश्मीर की कांस्य-मूर्तियां

□ मोतीलाल साकी

ललित कलाओं को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने में, प्राचीनकाल से ही, कश्मीर का योगदान प्रशंसनीय रहा है। इन कलाओं का रंगबिरंगा इतिहास तब तक अपूर्ण रहेगा जब तक उसमें कश्मीर का ज़िक्र न हो। सौन्दर्य प्रदर्शन हो अथवा साहित्य, मूर्तिकला हो या संगीत, चित्र-कला हो या स्थापत्य'''ललित कलाओं के इन सभी क्षेत्रों में कश्मीर का विशेष महत्त्व रहा है।

इस बात में कोई संदेह नहीं कि इन क्षेत्रों में कश्मीरी कलाकार विभिन्न स्रोतों से प्रभावित होते रहे हैं। ऐसा होने पर भी वे नक़्क़ाली के पीछे न चले। अपितु उन्होंने रचनात्मक कौशल को काम में लाकर प्रत्येक वस्तु को एक खास रंग प्रदान किया। रचनात्मक प्रक्रिया को उन्नति के पथ पर ले जाकर, कश्मीरियों ने हर क्षेत्र में नाम अर्जित किया। स्थापत्य कला, चित्र-कला और मूर्तिकला आदि क्षेत्रों के अलग-अलग स्कूल स्थापित हुए जिनकी प्रसिद्धि आज भी कला-प्रेमियों को अपनी ओर खींचती है।

कश्मीर में मूर्तिकला गान्धार की चित्रकला के प्रभाव से जन्म पाती है। धीरे-धीरे यह कला अपना एक अलग रंग धारण कर लेती है। स्थानीय प्रभाव से यह कला, शक्ति प्राप्त करके पुष्ट होती है। कालान्तर में हमारी चित्रकला ने गांधार के प्रभाव के साथ-साथ, गुप्त, प्रतिहार और मथुरा स्कूलों का प्रभाव भी ग्रहण किया परन्तु इस कला की निजता को हमारे कलाकारों ने हर मोड़ पर क़ायम रखा। इस प्रकार कश्मीरी चित्रकला एक ऐसा ताज़ा गुलदस्ता बन गई जिसमें रंगारंगी होने पर भी अपनी अलग विशेषता विद्यमान है।

चित्रकला के क्षेत्र में कश्मीरियों का प्रभाव कश्मीर तक ही सीमित नहीं रहा अपितु सौन्दर्य निर्माण की इस ज़ोरदार लहर ने हिमाचल प्रदेश, सवात, लद्दाख और तिब्बत तक और कुछ क्षेत्रों में अपने आपको इससे भी आगे तक फैला लिया। मूर्तिकला का एक रूप कांस्य की मूर्तियों का बनाना और उनकी तराश-खराश है। इस दिशा में भी प्राचीन काल में कश्मीर को विशिष्टता प्राप्त थी। कश्मीर कांस्य-मूर्तियों का एक अलग स्कूल था।

कांस्य की कश्मीरी मूर्तियों को ललित कलाओं के इतिहास में एक अलग स्थान प्राप्त है। दूसरे कला-क्षेत्रों की तरह कश्मीरी कांस्य-मूर्तियों को अपना विशिष्ट मिज़ाज मिला है जिससे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह आसानी से परखी जा सकती हैं। पहली बात यह कि कश्मीर में धातों की मूर्तियां बनाने में कांस्य के मुक़ाबले में पीतल का अधिक प्रयोग हुआ है। सारे देश में कश्मीर ही एक ऐसा स्थान है जहां कांस्य के मुक़ाबले में पीतल को पहला स्थान दिया गया है। कश्मीर में बनी कांस्य की प्रायः सभी मूर्तियां अन्दर से खोखली हैं। इन मूर्तियों पर आकार, इन्हें गढ़ने के पश्चात बनाये गए हैं। मूर्तियों को गढ़ने और बनाने के पश्चात चमकाया गया है। कश्मीर की कांस्य-मूर्तियों की विशेषता मन्बतकारी है। प्रायः मूर्तियों में आंखें चांदी की और होंठ तांबे के लगाए गए हैं। कुछ मूर्तियों का पहनावा भी तांबे की मन्बतकारी से उभारा गया है जिससे पहनावा अधिक शोभायमान दिखाई दे सके। सच तो यह है कि मन्बतकारी का कलापूर्ण बरताव जैसा कश्मीर में हुआ है वैसा कांस्य की मूर्तियां बनाने वाला दूसरा कोई स्कूल नहीं कर पाया है। प्रतापादित्य के अनुसार यह बात असम्भव नहीं कि मन्बतकारी की यही कला फिर ग़ज़नी के रास्ते पूर्वी ईरान तक पहुंची। यह बात ध्यान देने योग्य है कि पीतल पर मन्बतकारी ग्यारहवीं शताब्दी के पश्चात ईरानी ठठेरों की विशेष कला बन गई। कश्मीरी कांस्य-मूर्तियों की दूसरी विशेषता इनके पहनावे में खासकर भद्र-पीठ पत्थर पर कश्मीरी कमल और कश्मीरी आभूषणों का बरताव है।

किलोलैंड के अजायबघर में आठवीं शताब्दी की कांस्य की एक सूर्य की मूर्ति है। इस कश्मीरी कांस्य मूर्ति में सूर्य कमर पर लुंगी बांधे दिखाया गया है। इसमें 'फेरन' की तरह का एक चोगा, जो टखनों तक लंबा है, और जिसके दायें-बायें चाक लगे हैं, दिखाया गया है। मेरे विचार में यही पहरावा हमारे 'फेरन' का पूर्व आकार है। यदि चोगे के चाक सी लें तो यह मूर्ति लुंगी बांधे एक कश्मीरी पंडितानी का रूप धारण कर लेती है। यदि लुंगी खोल दें और चोगे को वैसे ही रख दें तो यह पुराने ज़माने का पंडितों का 'फेरन' बन जाता है। ऐसी पोशाक को संथी अथवा कुशान पोशाक गिना गया है। इस प्रकार कश्मीरी 'फेरन' की कहानी ईस्वी सन् के पूर्व तक पहुंचती है। क्योंकि कश्मीर का उत्तरी भाग कनिष्क से पूर्व कुशन राज्य का हिस्सा था। कुशन से पूर्व पुंछ आदि इलाक़ा मीनान्दर के आधीन था। देहली के 'नेशनल म्यूज़ियम' में छठी शताब्दी की एक और कांस्य की सूर्य-मूर्ति है। इस मूर्ति का चोगा आजकल के कश्मीरी फेरन के काफी नज़दीक है और फेरन का गला भी साफ-साफ दिखाई देता है। मूर्ति ने 'सागलर' ढंग की एक माला पहनी है जो आजतक पुरानी चाल की औरतें पहनती हैं। नवीं शताब्दी में बनी हुई भगवान बुद्ध की बावन सेंटीमीटर ऊंची एक कश्मीरी कांस्य-मूर्ति न्यूयार्क के मेट्रोपोलिटन म्यूज़ियम में सुरक्षित है। इस मूर्ति के कानों में लटकता हुआ एक आभूषण है जिसके निचले भाग में एक गोल-गोल वस्तु बांधी हुई है। ज़ेवर से लटकते दोनों गोलार्क मूर्तिकार ने कंधों से लगे हुए दिखाये हैं। कांस्य की मूर्तियां परखने वालों को अभी तक इस आभूषण की शिनाख्त नहीं हो सकी है। परन्तु कश्मीर की संस्कृति का कोई भी जानकार कह सकता है कि यह आभूषण 'डेजहोर' है जो केवल कश्मीरी पंडितानियों का विशेष ज़ेवर है। इस 'डेजहोर' पर ज़रा ऊपर की ओर पुराने ढंग की पंडितानियों की 'ताल रज़' (सर से बांधने का सुनहरी धागा) है और उसके ज़रा ऊपर गोलक है जो कानों से लटक रही है। यद्यपि अब इस प्रकार के 'ताल रज़' और गोलक दिखाई नहीं देते, क्योंकि इनका स्थान 'अठ' नाम के ज़ेवर ने ले लिया है, पर इतना होने पर भी ज़ेवर की शिनाख्त कठिन नहीं। 'डयजहरु' (कानों से लटकने वाला आभूषण) डाले पत्थर की एक और मूर्ति श्रीनगर के श्री प्रताप म्यूज़ियम में मौजूद है। बुद्ध धर्मानुसार लम्बे कान योग्यता और बुद्धिमत्ता की निशानी हैं। सम्भवतः 'डयज़हरु' भी इस बात की ओर इंगित करता है यह बौद्ध धर्म की देन है। हो सकता है कि महायान में इसका कोई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
विशेष महत्त्व हो। इस बात को खोजने की आवश्यकता है। विद्वानों का यह ख़याल कि इस ज़ेवर का सम्बन्ध मध्य एशिया से है, प्रामाणिकता चाहता है।

परन्तु कश्मीर में आज तक इसका चलन एक प्राचीन प्रतीक की जीवंतता को दर्शाता है। कश्मीरी पंडितों ने बुद्धधर्म से अन्य कई चीजों के साथ 'डयजहरु' भी प्राप्त किया। 'डयजहरु' का स्त्रियों के साथ विशेष सम्बन्ध होना भी आश्चर्यकारक नहीं। हिन्दू धारणा के अनुसार स्त्री शक्ति अर्थात् सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, काली इत्यादि मानी जाती है। योग्यता और विद्या का प्रतीक होने के कारण हिन्दुओं ने, विशेषकर कश्मीरी पंडितों ने 'डयजहरु' को स्त्रियों के साथ सम्बद्ध कर दिया है। कश्मीर में बौद्ध धर्म के विशेष प्रतीकों का पनपना और सुरक्षित रहना एक ऐतिहासिक अनुरोध भी है। इस समय कश्मीर में महायान को वही महत्त्व प्राप्त था जो हीनयान में मथुरा को। यह भरोसा कश्मीर को चौदहवीं शताब्दी तक प्राप्त रहा क्योंकि इस ज़माने में बौद्ध यात्री कश्मीर आया-जाया करते थे और कश्मीरी भिक्षु दूर-दूर देशों तक पहुंचते थे। परजन्य पारमित की एक और कांस्य की मूर्ति न्यूयार्क में 'सेमोइल एलन बर्ग' के संकलन में सुरक्षित है। इस मूर्ति की विशेष बात कानों में बड़ी-बड़ी बालियां तथा बांहों के कंकण हैं। यह दोनों आभूषण अभी भी गांव में स्त्रियां पहनती हैं।

कश्मीर के मूर्तिकारों ने इस प्रकार अपनी कला दिखाकर एक तो अपनी संस्कृति को दूसरों तक पहुंचाया है और दूसरे इसे आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित कर दिया है।

राजतरंगिणी में उन कई लम्बी कांस्य-मूर्तियों का ज़िक्र आया है जो भिन्न-भिन्न राजाओं मंत्रियों, रानियों और धनाढ्य व्यक्तियों ने अलग अलग मन्दिरों और अस्थापनों में लगवाई हैं। इनमें से कुछ सोने की, कुछ चांदी की और कुछ पीतल की हैं। मार्तण्ड और परिहासपुर में ललितादित्य ने मन्दिरों में सोने की मूर्तियां लगवाई थीं। श्रीनगर तथा परिहासपुर में विहारों में भगवान बुद्ध की तांबे की बहुत ऊंची मूर्तियां थीं। परन्तु इन बहुत ऊंची मूर्तियों में से एक भी शेष नहीं बची जिसके लिए विशेष ऐतिहासिक परिस्थितियां उत्तरदायी हैं। श्रीनगर में भगवान बुद्ध की तांबे की मूर्ति का ज़िक्र करते हुए कल्हण लिखते हैं कि क्षेमगुप्त ने जब जैनेन्द विहार जलवाया तो बुद्ध की तांबे की काफी लम्बी मूर्ति सारे नगर को आंखें फेर-फेरकर देख रही थी। श्रीनगर में ही 'पांद्रेठन विहार' में मथुरा से लायी गई भगवान बुद्ध की, वह क़द्दावर धातु मूर्ति थी जो तुर्क मंत्री चुंकन ने राजा ललितादित्य को एक क़ीमती लाल देकर खरीदी थी। यह क़द्दावर धातुमूर्ति कल्हण के समय में मौजूद थी। ऐतिहासिक घटनाओं का शिकार होने के बावजूद आज भी दुनिया के अजायबघरों में कश्मीरी कांस्य-मूर्तियों की एक अच्छी संख्या मौजूद है। इन्हें खंगालने पर कश्मीर में कांस्य-मूर्तियों का प्रकाशवान भूतकाल आंखों के सामने आता है जिसमें मूर्ति-कला की कारीगरी चमककर आसपास को प्रकाशित कर रही थी।

कश्मीर की जो कांस्य-मूर्तियां सम्प्रति बच पायी हैं उनमें हिन्दू धर्म से सम्बन्धित मूर्तियों की तुलना में बौद्ध मूर्तियों की संख्या कुछ ज़्यादा ही है।

मूर्तिकला के क्षेत्र में कश्मीर को उसी प्रकार एक स्कूल का दर्जा प्राप्त था जिस प्रकार बंगाल और बिहार को हासिल है। इस बात की ओर पहले ही संकेत किया गया है। परन्तु कश्मीरियों को यह उच्चता प्राप्त है कि वे न केवल रिवायत से चिपटे रहे अपितु उन्होंने अपनी ओर से मूर्तिकारिता की कला में इज़ाफा भी किया। इसीलिए एक अलग मिज़ाज रखने के कारण कश्मीर की कांस्य-मूर्तियां प्रत्येक संकलन में दृष्टि-सम्पन्न लोगों को सुविधा से हाथ आती हैं।

प्रिंस् आफ वेल्ज़ म्यूज़ियम में सुरक्षित विष्णु की एक कांस्य मूर्ति देखने योग्य है। पचीस

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सेंटीमीटर ऊंची इस कांस्य मूर्ति का सम्बन्ध नवीं शताब्दी से है। गरुड़ासन विष्णु की यह मूर्ति काफी नफासत से बनाई गई है। विष्णु गरुड़ पर सवार हैं और दो ओर से चार देवियां उनकी स्तुति कर रही हैं। यह देवियां पत्तों पर खड़ी हैं। विष्णु के चार शिर हैं। जिनमें से एक मनुष्य का, दूसरा शेर का, तीसरा वराह का और चौथा राक्षस का है। कांस्य की इस कश्मीरी मूर्ति की चार बांहें हैं। इसके ऊपर वाले दो हाथों में गदा और चक्र है। इसके दाईं ओर के मण्डल का आधा भाग टूटा हुआ है। मूर्ति के निचले दो हाथों में कमल और शंख है। गरुड़ भी कमल के ऊपर है और इसकी भी चार बांहें हैं। इनमें से दो विष्णु को सहारा दिये हैं और शेष दो हाथों में अमृत का मठ है। मूर्ति की विशेष बात है मूर्ति-सज्जा में पत्तों का प्रयोग। जिससे इसकी नज़ाकत में वृद्धि हुई है। भिन्न-भिन्न मुखों की आंखें चांदी की मन्बतकारी का परिणाम हैं। 'डगलस बेरट' के अनुसार यह कांस्य-मूर्ति अपने ढंग का एक ही नमूना है। इसी प्रकार की दो मूर्तियां वेरीनाग से प्राप्त हुई हैं। मूर्तिकारिता के अनुसार यह दो मूर्तियां भी उपरिवर्णित कांस्य-मूर्ति जैसी ही हैं और इनमें बहुत कम अन्तर दिखाई पड़ता है। 'देवसर' के अवतार चक्र में विष्णु की खोपड़ी पर नरसिंह, मनुष्य और वराह-मुख है। इसके ऊपर है हय-मुख। यह मुख उसे ग्रिव राक्षस मारने के लिए धारण करना पड़ा था।

बैकुण्ठ नारायण की मूर्ति सर्वप्रथम अवन्तीपुर से प्राप्त हुई है। अवन्तीपुर के खंडहरों का सम्बन्ध नवीं शताब्दी के साथ है। इस प्रकार की बैकुण्ठ मूर्तियां दक्षिण-पूर्व राजस्थान में दसवीं शताब्दी के पश्चात मिलती हैं। सभी शोधकर्ताओं ने मूर्तिकला के सम्बन्ध में कश्मीर की देन को स्वीकार किया है। हरमन गोइज़ का कथन है—"सांस्कृतिक तौर पर काफी उभरते कश्मीर में शैव तथा वैष्णव धारणा को हिन्दू मूर्तिकला ने प्रगति दी। इसकी देन त्रिमुख-विष्णु है। जिसमें शाही मुख के साथ-साथ नरसिंह और वराह-मुख दिखाए गए हैं। इसमें सूर्य की कई बांहें और मुख हैं। इस ढंग की सूर्य-मूर्ति सासानी पोशाक पहने मार्तण्ड से प्राप्त हुई है।"

न्यूयार्क की 'डोनिस वेलर गैलरी' में उष्नेश विजय देवी की दसवीं शताब्दी की सत्रह सेंटीमीटर ऊंची एक कांस्य-मूर्ति है। इस मूर्ति की विशेषता है मण्डल की चौड़ाई जो कश्मीर की खास भवन-निर्माण कला प्रकट करती है। मूर्ति की चौड़ाई छत्रावली का आभास है और यह ढंग आज भी कश्मीर में ऋषि-भवन निर्माण कला में दिखाई देता है जिसमें गुम्पा और स्तूप को एक समान दिखाया गया है। ऊपर की तरफ छत्रावली 'ब्रंग' चढ़ाये विद्यमान हैं। इसके अलावा देवी के बाजूबंद, वक्ष-मालाभरण और चूड़ियां लगी हैं। यह सभी आभूषण अभी भी कश्मीर में प्रचलित हैं।

पान एशियन संकलन में शामिल पारजन्य पारमिता की एक कांस्य-मूर्ति ऐसी है कि जिसमें देवी द्वारा 'डेजहरु' की ढंग का आभूषण कानों में पहना मिलता है।

कश्मीर की कांस्य-मूर्तियों पर विस्तार से काम करना अभी शेष है। इन मूर्तियों में से अकसर इस शताब्दी के छठे दशक में प्राप्त हुई हैं। यह तब हुआ जब तिब्बत में राजनैतिक परिवर्तन हुआ। इन मूर्तियों में से अकसर विदेशी अजायब घरों में पहुंच गईं और कई एक व्यक्तिगत संकलन का हिस्सा बन गईं। इससे पूर्व कुछ मूर्तियां उस समय १९४८ ई० में प्राप्त हुईं जब महाराजा कश्मीर ने गद्दी छोड़ी थी। तब तक ख्याल था कि कश्मीरी कांस्य-मूर्तियों की संख्या आटे में नमक समान बच रही है।

कश्मीर की कांस्य-मूर्तियां किस प्रकार तिब्बत पहुंचीं इस बारे में यही कह सकते हैं कि कश्मीर में राजनैतिक उथल-पुथल के कारण कश्मीरी भिक्षु घर छोड़कर उन इलाकों में चले

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गए जहां बौध धर्म को महत्त्व प्राप्त था। उन्हीं के साथ कश्मीर की कांस्य मूर्तियां भी, पूजार्थ, वहां पहुंचीं, आठवीं और नवीं शताब्दी की बहुत-सी सुन्दर कांस्य-मूर्तियां, जिनमें बौद्ध मूर्तियां और स्तूप सम्मिलित हैं, आज भी लद्दाख के बौध-खानक़ाहों में मौजूद हैं। यह मूर्तियां बनावट के लिहाज़ से कश्मीरी शिल्प के सर्वाधिक निकट दिखाई देती हैं।

यह बात उल्लेखनीय है कि अपने उत्कर्ष काल में कश्मीरी मूर्तिकारों ने अपने आस-पास के सारे इलाकों, जिनमें सवात, लद्दाख, तिब्बत तथा दूसरे क्षेत्र सम्मिलित थे, में अपनी जगह बना ली थी। इन जगहों से जो कांस्य-मूर्तियां मिली हैं वह खालिस कश्मीरी लगती हैं। प्रसिद्ध कलाविद शिव-राम मूर्ति बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

"चम्बा के भरमौर और छुतराही ग्रामों में जो महिषमर्दिनी, बैठे हुए नरसिंह, कुमारी तथा ऐसी ही कांस्य-मूर्तियां उपलब्ध हुई हैं, उनका मुख लम्बा पर रूप अति सुन्दर है। यह मूर्तियां अट्ठारहवीं शताब्दी में कश्मीरी मूर्तिकला को प्रदर्शित करती हैं।"

शिवराम मूर्ति का यह वक्तव्य स्पष्ट करता है कि हिमाचल प्रदेश में कुछ ही समय पूर्व कांस्य-मूर्तियों का कश्मीरी स्कूल एक जीवित सत्य था।

कश्मीर की कांस्य-मूर्तियां जिन संग्रहालयों को आज भी सुशोभित कर रही हैं इनमें 'पैन एशियन संकलन', 'सप्निक ऐंड सन लंदन', 'बर्लिन म्यूज़ियम', 'लास ऐंजिल्स कंट्री म्यूजियम आफ आर्ट', श्री प्रताप म्यूज़ियम श्रीनगर, नेश्नल म्यूज़ियम देहली, प्रिंस आफ वेल्ज़ म्यूज़ियम बम्बई, टारन्टो यूनिवर्सिटी एटकिन्स म्यूज़ियम कन्सास, कल्यूलैंड म्यूज़ियम, नार्टन सायमन संकलन, रिचमांड म्यूज़ियम आफ फाइन आर्टस, तिब्बत हाउस नई दिल्ली, स्टील आर्ट म्यूज़ियम तथा मेट्रोपोलिटन म्यूज़ियम न्यूयार्क आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कई सभ्यताओं के संगम पर स्थित होने के कारण दूसरी चीजों की तरह कश्मीरी कांस्य-मूर्तियों पर भी पड़ोसी देशों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। किन्तु इस प्रभाव ने इस कला को दूषित नहीं किया है अपितु इसके बदले इसे हर रंग में उन्नत किया है।

मेरी व्यक्तिगत राय यह है कि जो कारीगरी कश्मीरी कारीगरों ने पत्थरों और धातों में दिखाई है उससे ज़ाहिर होता है कि इससे पूर्व यह कारीगरी लकड़ी की कला में दिखाई गई होगी। इस पुरानी कारीगरी ने नये रंग पकड़े और जगत प्रसिद्ध दस्तकारियों का उद्भव हुआ। 'वेले' अपनी 'चेनहान शिव' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि कश्मीर फलों का देश है और यह हस्त-कलाओं तथा सोजनकारी के लिए प्रसिद्ध है। इस तथ्य को सामने रखते हुए यह दावा तथ्यहीन लगता है कि कश्मीर की हस्त-कलाओं का उद्गम 'मध्य एशिया' है और वह भी चौदहवीं शताब्दी के बाद का। ☐

कश्मीरी से अनुवाद : अर्जुनदेव 'मजबूर'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

छः कविताएं

क्या उत्तर दूं

□ पृथ्वीनाथ 'मधुप'

केसर-कुसुमों से गंधाते
अंबरी सेबों जैसे
विशाल चिनार की
छाया-से
दिनों पर
बैठ गया
कुण्डली मार कर
काला अजगर
कहां से आकर?
—पूछ रहे
'लल', 'नुंद ऋषि' के 'वाख'
रह-रह कर—
चुप हूं
क्या उत्तर दूं।।

□

रास्ता-१

'हरि पर्वत' थिर नहीं
थिर दिखा था
उनको
मानते थे जो
कुचला पड़ा
नीचे/इसके
जलोद्भव-शव

सांसें ले रहा
जलोद्भव।
देखो ग़ौर से
कंकर-कंकर
प्रकटेगी
सच्चाई

कांप रही
बुरी तरह
थिरता पर्वत की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहोगे अब भी
नीचे
कुचली पड़ी
बोटी-बोटी ?

मैना अब
नहीं लायेगी
चोंच में ठीकरी
एक बार
दिखा तो गई
रास्ता

□

रास्ता-२

"यही रास्ता वहां जाता है।"
यह रास्ता
वहां नहीं जाता
नहीं जाता

जाता
तो
पहुंच न पाते
(लम्बे सफर के बाद भी)
वहां
पहुंचना था
जहां
छले गये
उनसे
हमारे पुरखे
हम पुरखों से

अब
नया रास्ता
अपने लिये ?
उत्तराधिकारी भी
स्वयं ही
नया चुनें।

□

षड्यन्त्र

बहुत ही उदास है
चिनार की घनी छाया :
पत्ते
षड्यन्त्र रच गये
जड़ों को उखाड़ने का ।।

□

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मेरा दिन

मेरा दिन
सुबह से शाम
घूरे की
लिसलिसी सड़न में
डूब-डूब
सांसों को
छटपटा रहा—

क्या हुई
भगीरथों की
वह
घोषणा ?

कब
—फाइलों से निकल
फूट पड़ेगी
गंगा ?

कुतुब मीनारों से कब
आयेगी
हवा ?

□

उनके नाम

पा ली
अंजलि भर हरियाली ?
भोगा
दानों के टटके सुनहरेपन को ?

झटको
उठो
कब से भ्रम पाल रहे हो !

शातिराना चाल समझो
मुट्ठियां बनो
तनो

आदमखोर इरादों की
रीढ़ पर
फौलादी वार बन
एक साथ
बरस पड़ो
ओ,
फैली हथेलियो !

□

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दो कविताएं

चिनार

□ महाराज कृष्ण संतोषी

चिनार !
बचपन में बार-बार
धूप-बारिशों से बचने
मैं तुम्हारे नीचे आ जाया करता था
और तुम हमेशा
मज़बूत
अपनी टहनियों पर
रोकते रहे मेरे लिए
मौसम का हर वार !

किस तरह आयु का खरगोश
यौवन तक आ गया
पता नहीं चला
मगर मैं भूल नहीं पाया
तुम्हारा आकार !
हालांकि तेज़ बारिशों से बचने
मैं खरीद लाया हूं एक छाता
और तेज़ धूप से आहत
अब मैं तुम्हारे नीचे
खड़ा नहीं होता
किसी रेस्तरां में चला जाता हूं
दोस्तों से बतियाता हूं
या अकेले चाय की चुस्कियों के साथ-साथ
बलात्कार की खबरों से
मन बहलाता हूं।

नहीं चिनार !
तुम्हारे बारे में सोचना
धूप-छांव के बारे में
सोचना नहीं होता
हर बार
तुम्हारा तानाशाह आकार
कितने उन पौधों का दर्द
रख देता है मेरे होंठों पर
जिन्हें तुमने बढ़ने ही न दिया
फैलाने ही न दीं
अपनी शाखें
सुनने ही न दिया
पंछियों का शोर
सच, यहीं से मैंने शुरू किया
तुमसे घृणा करना
तुम्हें अपनी यादों की मिट्टी से
अलग करना !

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह सही है
बहुत कठिन है
तुम्हें उखाड़ फेंकना
तुम्हें जड़ से अलग करना
किन्तु सरल कितना
शाख-शाख तुम्हें काटना
कि धूप को रोकने का
जाता रहे तुम्हारा साहस
कि बारिशों को थामने का
तुम कोई हौसला ही न कर सको
कितना जरूरी है
तुम्हारा उखड़ना, चिनार !
छोटे-छोटे पेड़ों के लिए !

तुम्हें देख सरसब्ज या लाल-लाल
कितने सम्मोहित होकर
पर्यटक !
अपने अनुभव थैलों में
भर लेना चाहते हैं
तुमसे अर्जित सुख
और यथा फुर्सत
इस्तेमाल करना चाहते हैं
घर-बाहर की उदासियों से तंग
एक पलायन यात्रा में !

कितने खुश लगते हो
जब कतार-दर-कतार आंखें
तुम्हें निहारती हैं
और बदले में बतौर प्रसाद
तुम उनमें बांटते हो
अपनी छायाएं
तुम जानते हो
सहयोग में उठा हर हाथ
कायर होता है
और यह भी जानते हो
मौसमों से जूझने वाला व्यक्ति
पेड़ों के नीचे खड़ा नहीं होता !
चिनार।

तुम फलहीन हो
फिर भी सम्माननीय
कोई तुम्हारी ओर
अंगुली नहीं उठा पाता
कोई लक्कड़हारा
तुम्हें काटने नहीं आता
यह जरूर है
पतझड़ तुम्हारे पत्तों का रंग
हर लेता है
जिन्हें हवा अपनी पीठ पर
भगा ले जाती है
पत्ते जो दोबारा
तुम्हारी ही जड़ों के निकट
गिर पड़ते हैं !
कितना सुन्दर लगता है तुम्हें
पत्तों का यह समर्पण
खुश होकर
तुम कितने नम्र बन जाते हो
रोकते ही नहीं उन हाथों को
जो झाड़ू लगाकर
तुम्हारे पत्तों में
लगा देते हैं आग
यह नम्रता भी देखो
कितना बड़ा छल है तुम्हारा
बेचारे पत्ते
सुन-सुनकर तुम्हारे ही गुण
बन जाते हैं कोयला
और तुम वसन्त की प्रतीक्षा में
ध्यानमग्न हो जाते हो !
वसन्त
खुद अपने हाथों से
पहनाकर तुम्हें हरापन
घास में छिप जाता है
तुम्हारा आकार
फिर एक बार
झूठे संत की
आध्यात्मिकता ओढ़ लेता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुर्गी-घोड़ा सम्वाद

और मुर्गी को
पूरा विश्वास होने लगा था
कि फिर रहे हैं उसके दिन।
भला क्यों नहीं होता
पुराने उस दमघोंटू दरबे की जगह
बन जो गया था
नया एक जालीदार दरबा
दानों में भी तनिक होने लगा था इज़ाफा
और फुर्सत में कुछ लम्हे
मालिक भी प्यार से था
लगा हाथ फेरने
मुर्गी खुश थी
आश्वस्त थी अपने भविष्य के प्रति।

पास ही उसके
रोज बंधा करता था
एक बेचारा घोड़ा
दिनभर हांफने-दौड़ने के बाद
जो बड़ी कठिनाई से
भूल पाता था
लोहे का स्वाद।

घोड़ा कम बोलता था
मुर्गी वाचाल थी
घोड़ा
भोजन के तुरन्त बाद
नींद को पास अपने
बुला लेता था
मुर्गी
दरबे में ही अकसर
टहलती रहती थी
क्योंकि स्वास्थ्य के प्रति
वह अधिक सचेत थी।
घोड़ा
अपने मालिक से
घृणा करता था
मुर्गी अण्डों से
उसे रखना चाहती थी खुश !

एक रोज़
मुर्गी ने घोड़े को छेड़ा
बोली
'घोड़े बाबा !
बड़े ठाठ हैं तुम्हारे
देखो, मुंह में तुम्हारे
कितनी सुन्दर लगाम रहती है
और दिन भर
तुम कितने सुन्दर लोगों को
करीब से देखते हो
और मैं कितनी भाग्यहीन
थोड़ा इधर-उधर हो-आ के
बस खाती ही रहती हूं दाना
भला तुम्हारे मुकाबिल
मेरा भी यह हुआ कोई जीना !'
घोड़ा समझ गया
मुर्गी की बातों का सार
बोला मगर नम्र होकर :
'सुन मुर्गी रानी !
कितना अच्छा लगता है
जालीदार दरबे में रहना
और दाना खाते रहना
और अण्डे देना
और वज़न बढ़ाना
और एक रोज़ चाकू के साथ
घुल-मिल जाना !

मैं मगर घोड़ा नमकहराम
खरखरे के वक्त भी
घूरता रहता हूं
अपने मालिक को
देखता रहता हूं स्वप्न
अपनी नस्ल की मुक्ति का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पढ़ता रहता हूं
नमकहराम कविताएं !'

सुनकर
अपने जालीदार दरबे के एक किनारे
मुर्गी कुछ सोच में पड़ गई

पास ही घोड़ा
लगा खुरचने धरती
और रहा सोचता —
कोई भी मौसम
हम घोड़ों के अनुकूल
क्यों नहीं आता ? □

अकादमी द्वारा प्रकाशित

जम्मू-कश्मीर के हिन्दी लेखकों के निबन्धों का अनूठा संकलन

शब्द जो तुमने दिए

सम्पादक : रमेश मेहता

मूल्य : ६.५० रुपये

□

चीड़ों में ठहरी बयार

(हिन्दी कविता, कहानी, एकांकी, निबन्ध)

सम्पादक : रमेश मेहता

मूल्य : १४.५० रुपये

जम्मू-कश्मीर कल्चरल अकादमी से रियायती दरों पर उपलब्ध

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उपन्यास अंश

सपन राग

□ राकेश वत्स

गाड़ी के इंजन की आवाज़ की ताल पर अब मैं भी श्रीकांत के विश्वास के बारे में चिंतित था। सोच रहा था कि इस आस्था का मूल आधार क्या है? मुझे अपने निष्कर्ष ज्यादा सही लग रहे थे कि दुनिया में सिर्फ़ दो ही वर्ग हैं – एक शासक वर्ग और दूसरा शासित वर्ग। उन देशों की जनता ज्यादा सुखी और समृद्ध रहती है जहां शासित होने वालों का भी अपना एक चरित्र होता है। शासक होने से शासित होना कहीं ज्यादा मुश्किल काम है। हालात इस तरह के बना दिये गए हैं कि कोई भी वर्ग इस मुश्किल काम के प्रति ईमानदार होने की बजाय शासक बनने की होड़ में लगा रहता है।

मुझे लगा कि इस वक्त मुझे गाड़ी में नहीं बल्कि उन दोनों की बहस के बीच होना चाहिए था। हो सकता है जब तक लौटकर पहुंचूं तब तक विचार-विमर्श खत्म हो जाए और मैं इस महत्त्वपूर्ण चिंतन को अभिव्यक्ति देने से ही वंचित रह जाऊं। यह विचार आते ही एक्सेलरेटर पर पांव का दबाव बढ़ गया और स्पीडोमीटर की सुई सत्तर के अंक को क्रॉस करने लगी। लेकिन थोड़ी देर बाद ही सुई फिर नीचे खिसक आई। याद आ गई तीन वर्ष पहले की वह घटना जिसके बाद मेरा श्रीकांत के साथ मिलना पूरी तरह से बन्द हो गया था और हमारी मित्रता अगर दुश्मनी में नहीं तो गहरे बेगानेपन में जरूर डूब गई थी।

शिमला में दोनों प्रान्तों के विभागों का एक मिला-जुला कवि सम्मेलन था जिसमें श्रीकांत को नहीं बुलाया गया था। जब उसे पता चला कि एक चपरासी ने उसका नाम यह कह कर कटवाया है कि वह तो नशे में धुत्त होकर मंच पर गिर पड़ता है तो चपरासी को सबक सिखाने के लिए अपने एक प्रशंसक को साथ लेकर दफ्तर में आ धमका और लगा बेचारे चपरासी पर गालियों की बौछार करता हुआ उसे गलहथे देने। उस दिन मेरे कहने से स्टाफ के लोग पकड़कर उसे दफ्तर से बाहर न निकालते तो पता नहीं उसका नशा क्या कुछ कर गुजरता।

अब भी वह अपने इस आरोप पर कायम है। मैंने एक धेले के आदमी—चपरासी का साथ देकर उसकी दोस्ती के साथ विश्वासघात किया है, और इस निर्णय पर भी कि मेरे जैसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बुर्जुआ मानसिकता वाले आदमी के साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध रखना अपनी प्रतिबद्धता और वैचारिकता को धोखा देना है।

दफ्तर पहुंचकर उस जगह को देखा जहां चपरासी की नाक का खून बहा था तो उस घटना की बारीकियां भी याद हो आईं। लगने लगा जैसे अब भी श्रीकांत दफ्तर के बाहर की सड़क पर खड़ा गालियां बक रहा है और चुनौती दे रहा है कि मेरे समेत दफ्तर के एक-एक आदमी को समझ कर ही वह वहां से टलेगा।

अन्ततः कटारिया के फ़ोन करने पर पुलिस के दफ्तर में आने का दृश्य। श्रीकांत और उसके साथी को पकड़कर पुलिस स्टेशन ले जाने का दृश्य। इसके बाद एक बहुत बड़े पत्रकार का बीच में पड़कर समझौता करवाकर सब रफ़ादफ़ा करवाने का दृश्य। और अखबार वालों को कह-सुनकर इस खबर को छपने से रुकवाने का दृश्य।

कटारिया ने आकर मुझे टोका—"इस तरह सड़क पर क्या देख रहे हैं सर ! क्या किसी ने आना है ?"

"नहीं आना किसी ने नहीं है। बस यूं ही कुछ याद आ गया था !"

"क्या याद आ गया था सर ?"

"श्रीकांत के साथ घटी उस घटना वाला दिन !" बोलकर मैं अपने कमरे में पहुंचा। सब कुछ ठीक-ठाक मिला। कुछ कागज़ टेबल पर रखे थे, उन पर दस्तखत किये और फिर कटारिया को अपने सेक्रेटेरियट जाने और वहां देर हो जाने पर सीधे घर चले जाने की बात समझाकर मैंने अपना स्कूटर लिया और सत्रह सेक्टर की शॉप से सारा सामान, दो पैकेट सिग्रेट और थोड़ा खाने का सामान लेकर वापस चल दिया।

पहुंचकर देखा तो अगला दरवाज़ा उसी तरह से खुला मिला। एक फ़र्क भी दिखाई दिया कि किनारे के बेडरूम की खिड़कियों के शीशों के पीछे अब फूलदार पर्दे तने दिखाई दे रहे थे।

अन्दर जाकर देखा तो कुर्सियां खाली पड़ी थीं। टेबल की आधी बोतल खाली हो चुकी थी और दो गिलासों के पेंदे बता रहे थे कि व्हिस्की के साथ कहीं से रम भी आई है जो दो हिस्सों में बांटकर खत्म हुई है।

मैंने सामान टेबल पर रख दिया और बैठकर तीनों की प्रतीक्षा करने लगा।

थोड़ी देर बाद बेडरूम की चिटखनी खुलने की आवाज़ आई और विनोद बाहर निकल कर मुझ पर बरस पड़ा, "तुमने इतनी देर कहां लगा दी ?"

"पहले दफ्तर जाना पड़ा था !" मैंने अपनी आवाज को संयत रखने की कोशिश करते हुए कहा।

"पैसे नहीं थे तो मुझसे ले लिये होते !"···उसने हाथ से छाती ठोकी।

"नहीं, पैसों की बात नहीं थी !"

"अच्छा, तो और क्या बात थी ?" वह बिना मेरे जवाब का इंतजार किये लाये सामान का मुआयना करने लगा।

"देखो विनोद, तुम मेरे दोस्त हो, मैं तुम्हारे लिए, जितना भी जी चाहे गिराओ, गिर सकता हूं लेकिन इस तरह के धेले-धेले के लोगों के सामने तुम्हें अपनी बेइज़्ज़ती करने की इजाज़त मैं कतई नहीं दे सकता !"

"कौन धेले का आदमी ? श्रीकांत ! कर सकता है हिन्दोस्तान का कोई पोएट इसकी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पोएट्री का सामना ! तुम इसे धेले का आदमी कहते हो ! बड़े से बड़े एम० पी०, विधायक, पत्रकार और प्रोफ़ेसर एड़ियां रगड़ते हैं इसकी चौखट पर जाकर !"

"जितने दुर्गुण किसी आदमी में हो सकते हैं वे सारे के सारे इसके चरित्र में विद्यमान हैं। तुम समझते हो, तुम ही जानते हो इसे, मैं इसकी नस-नस से वाकिफ़ हूं।...ठीक है, कविता बहुत अच्छी लिखता है, इस नाते इसने लाभ भी खूब कमाया है। लेकिन आदमी का चरित्र भी तो कोई चीज़ है। जो कुछ वह लिखता है उसका एक परसेंट भी नहीं दिखाई देता उसकी ज़िन्दगी में !"

"जो कुछ राइटर लिखता है वह उसकी ज़िन्दगी में भी दिखाई दे, यह जरूरी नहीं है। अपनी ज़िन्दगी के जवान दस सालों में क्या-क्या बदकारियां नहीं की टालस्टाय ने, लेकिन दुनिया, ईवन महात्मी गांधी जैसे लोग भी उसके लेखन को महात्मा टाल्स्टाय का लेखन कहते हैं। लेखन का लेखक की पर्सनल लाईफ़ से क्या वास्ता !"

"वास्ता क्यों नहीं है ? जिस रचना से हम यह उम्मीद लगाते हैं, उम्मीद ही नहीं लगाते बल्कि उसकी बदलाव लाने की ताकत की पैरवी करते हैं, उसको लेकर यह सवाल उठाना क्या बिलकुल बेमानी है कि उसने अपने रचने वाले की ज़िन्दगी में क्या बदलाव लाया है या बेहतरी के बीज बोए हैं।"

इसी समय बेडरूम का दरवाजा फिर खुला और शिखा अपने होंठों को रुमाल से साफ करती हुई हमारे पास आ खड़ी हुई—"क्या बहस चल रही है ?"

उसके सवाल का जवाब विनोद ने दिया—"कुछ नहीं, जनाब का विचार है कि साहित्यकार का साहित्य और उसकी लाइफ़ एक जैसे होने चाहिए !"

"मैंने यह कब कहा है ?" विनोद द्वारा अपने कथन का गलत खुलासा करना मुझे अजीब लगा।

"और क्या कहा है ?"

"मैंने तो यह कहना चाहा है कि रचनाकार अपने साहित्य से जिस तरह का सामाजिक बदलाव चाहता है उसका कुछ न कुछ प्रतिशत लेखक को पहले अपने जीवन में देखना चाहिए !"

"इस दलील को मानने में तो मेरे खयाल में कोई दिक़्कत नहीं होनी चाहिए, क्योंकि साहित्य के सही और गलत होने को परखने की लेबोरेट्री अगर समाज है तो कुछ न कुछ अंशों तक उसको रचने वाले का जीवन भी है !" शिखा ने मेरी बात के समर्थन में उसके अर्थ को बड़ी खूबी के साथ एक्स्टेंड कर दिया।

"लेकिन इसका यह मतलब तो नहीं कि मृत्यु पर साहित्य लिखने के लिए लेखक को साहित्य लिखने से पहले या बाद में उसके असर को अपने जीवन पर पड़ा साबित करने के लिए आत्महत्या कर लेनी चाहिए !" विनोद ने विषय को फिर स्थूलता की तरफ खींचने की कोशिश की।

"मेरे ख्याल से आप लोग इस सब्जेक्ट को लेकर इस नतीजे पर मुत्तफ़िक हो सकते हैं कि ज्यादा बड़ा साहित्य वही है जो रचनाकार के जीवन में से फूटकर निकला हो, लेकिन जिस साहित्य का लेखक की पर्सनल लाइफ़ विरोध करती हो उसको भी जरा कम दर्जे का साहित्य मान लेने में भी कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए !" शिखा को शायद यही लग रहा था कि यह विषय बहस को आगे बढ़ाने का विषय नहीं है।

"चलो, ठीक है !" विनोद ने सामान उठाया और किचन में ले गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"श्रीकांत क्या चला गया ?"

"हां, वे तो तभी चले गए थे !" बोलकर शिखा ने बिखरे बालों को समेटा और उनका ढीला जूड़ा बांध लिया। फिर वह जैसे एकदम सचेत हुई—"मैं गिलास और पानी लेकर आती हूं !" मेरा जवाब पाए बिना ही वह भी किचन में पहुंच गई।

बाद में मैं अपनी वैचारिक उत्तेजना के साथ लड़ता रहा। मुझे यह समझ नहीं आ रहा था कि पूरी सुविधाएं जीने वालों का क्रांतिकारी या संघर्षशील साहित्य क्या माने रखता है। उसका पाठक के मन पर वह प्रभाव कैसे पड़ सकता है जिसे डालने के नारे के साथ उस साहित्य को सम्मानित किया जाता है और इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान दिया जाता है ?···

थोड़ी देर बाद दोनों लौट आए। नमकीन प्लेट में डालकर टेबल पर सज गया और तीन नये गिलासों के साथ कटे हुए नीम्बू भी अपनी भीनी-भीनी महक छोड़ने लगे। बर्फ के चौकोर टुकड़े भी अपनी शीतलता बिखेरने लगे। अब मुझे पश्चाताप होने लगा कि मैं आलस न दिखाकर थोड़ा आगे जाकर लैमन जूस भी ले आता तो ज्यादा अच्छा रहता। पर विनोद ने इसकी कोई शिकायत नहीं की। उसने बियर की बोतल खोलकर पहले शिखा का गिलास भरा और फिर मेरे तथा अपने गिलासों में विधिवत जिन का काकटेल तैयार किया। इसके बाद चियर्स की आवाज के साथ उसने बहुत पीछे छूट गए श्रीकांत को फिर से बातचीत के बीच ला पटका—

"तुम श्रीकांत को नज़दीक से नहीं जानते। उसे अलकोहल के नशे ने बरबाद कर दिया नहीं तो उस जैसा टेलेंट हिन्दी के किसी दूसरे पोएट के पास नहीं है !"

"तुम तो यार, उसकी ऐसे प्रशंसा कर रहे हो जैसे उसके पी० आर० ओ० लगे हुए हो।" मैंने महसूस किया कि जिन बहुत अच्छी है और बियर के साथ मिलकर उसने बहुत जल्द नशा करना शुरू कर दिया है।

"नहीं, मैं उसका पी० आर० ओ० नहीं हूं, उस गरीब की ज़िन्दगी पर तरस खाने वाला एक सम्वेदनशील आदमी हूं !" उसने बड़ी आसानी से अपना रुख बदल लिया।

"लेकिन जो आदमी दया की बजाय घृणा करने के काबिल हो, उस पर दया करना सम्वेदनशीलता के विकार को ही रोशनी में लाता है !"

"तुम मुझे गाली दे रहे हो !"

"तुम खुद अपने आपको गाली दे रहे हो !"

शिखा ने हम दोनों को टोका—"आप लोग क्यों ऐसे आदमी को बहस का विषय बना रहे हैं जो आप लोगों के बीच नहीं है ? मैंने भी सुन रखा है कि श्रीकांत जितना बढ़िया कवि है उतना ही घटिया आदमी है। एक दिन अपने आप ही साबित हो जाएगा कि उसके जीवन के घटियापन ने कहां-कहां उसकी पोएट्री को केप्चर किया है, इसके लिए हम लोगों को परेशान होने की कोई जरूरत नहीं है !"

शिखा के तर्क ने ऐसा गहरा असर किया कि बहस बीच में ही छिन्न-भिन्न होकर दिमागों में सिकुड़ गई। कुछ देर विनोद सिग्रेट के लम्बे-लम्बे कश खींचता रहा, फिर उसने एक ही झटके के साथ गिलास खाली कर डाला और फिर से नीम्बू की जिन तैयार करने लगा। मैंने भी गिलास खाली करके सामने रख दिया और उठकर बाथरूम में चला गया। वहां सोचता रहा—सचमुच शिखा बहुत बुद्धिमान औरत है। किसी औरत में सौन्दर्य और बौद्धिकता का इस तरह का सम्मिश्रण मेरे लिए बहुत ही ताज्जुब की बात थी। नहीं तो मेरा अनुभव आमतौर पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यही था कि सुन्दरता और बौद्धिकता का आपस में बैर है—चाहे औरत में हो चाहे मर्द में। इसका मनोवैज्ञानिक कारण भी मेरे पास मौजूद था, वह यह कि चेहरे से सुन्दर औरत और मर्द को बिना किसी जद्दोजहद के इस हद तक सहूलियतें मिलती रहती हैं कि संघर्षों में से उपजे अनुभवों की खुराक लेकर उसकी बौद्धिकता को विकसित होने का अवसर ही नहीं मिलता। कुरूप लोगों को बचपन से ही अपनी बुनियादी जरूरतें पूरी करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है, इसलिए वे रूपवान लोगों की निसबत ज्यादा बुद्धिमान होते हैं। पर शिखा इसका अपवाद थी और यह अपवाद मेरे लिए अध्ययन का विषय था।

लौटकर आया तो विनोद और शिखा के बीच मुझे लेकर बात चल रही थी। मुझे देखते ही दोनों चुप हो गए। इसके बाद कुछ देर तक सन्नाटा रहा। शायद इस सन्नाटे के दबाव में ही विनोद ने शिखा का आधा खाली हुआ गिलास फिर से भर दिया और जिन के पैग बनाने की तरफ मुड़ा।

मैंने पूछा—"क्यों, इस तरह से चुप क्यों हो गए ?"

उसने नीम्बू के दो कतरे अपनी जीभ पर टपकाने के बाद जवाब दिया—"शिखा तुम्हारे साहित्य के बारे में पूछ रही थी !"

"तो फिर बताया ?"

"हां, बताया कि जैसी ज़िन्दगी तुम जी रहे हो तुम्हारा साहित्य भी लगभग वैसा ही है !"

"लगभग क्या, बिलकुल वैसा ही है। मैं एक सरकारी ऑफिसर हूं, सुख-सुविधाओं में जी रहा हूं, मेरा साहित्य अफ़सराना साहित्य है और सुख-सुविधाओं में जीने वाले लोगों का साहित्य है।"

"आज के जमाने में इस तरह का कड़वा सच बोलते हुए मैंने अपनी ज़िंदगी में किसी साहित्यकार को पहली बार देखा है !" यह शिखा की आवाज़ थी।

शिखा ने ये शब्द मेरी प्रशंसा में कहे हैं या निन्दा में, मेरी समझ में नहीं आया था। पर विनोद ने जब उसका समर्थन किया तो लगा कि शायद यह कोई विनोद की समझ के ही पक्ष की बात है। मैंने अपने पर चल रहे विषय की दिशा बदली—"चलो खत्म करो यार, कहीं चलकर खाना खाते हैं, बहुत भूख लगी है !"

"ठीक है, चलो खत्म करो, शिखा !" उसने अपना गिलास मुंह से लगाया और खाली कर दिया लेकिन मैं एकदम डेढ़ इंच ऊपर था। मुझे आधा गिलास छोड़ते देखा तो शिखा भी अपना गिलास छोड़कर खड़ी हो गई।

यह देखकर विनोद थोड़ा तुनका—"अनाड़ी लोगों के साथ शराब पीना भी एक तरह से गलत शराब पीना है !" उसने शिखा का गिलास भी खाली कर दिया और चाभी पैंट की जेब से निकालकर जैसे हमें रास्ता दिखाने लगा।

बाहर निकलकर हम स्कूटर स्टार्ट ही कर रहे थे कि विनोद का प्रिय शिष्य कुन्दन साईकिल को चीखती हुई ब्रेक लगाकर हमारे सामने आ खड़ा हुआ—"सर, लड़की का पता चल गया है ! वह बी० ए० पार्ट सैकिण्ड की रेखा है !"

"क्या कहा ?" विनोद के जैसे होंठ सूख गए।

"हां सर, गर्ल्ज़ हॉस्टल की वार्डन ने यही बताया है !"

"ओ माई गॉड !" विनोद के हाथ हैंडल पर कांपने लगे। कुछ देर वह होंठों को दातों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
के बीच चबाता रहा, फिर कुन्दन से बोला—"बाकी के लड़के कहां हैं ?"

"सर, दो तो पुलिस की हिरासत में हैं, और बाकी के छुपे हुए हैं !"

"अच्छा, तुम साईकल यहां खड़ी करो और स्कूटर पर मेरे साथ आओ !"

आदेश सुनकर कुन्दन साईकल खड़ी करने चला गया।

बाद में उसने शिखा से कहा—"शिखा, तुम दीपक के साथ जाकर खाना खा लो ! मैं आप लोगों के साथ नहीं जा सकता। तुम नहीं जानती, रेखा इस यूनिवर्सिटी की सब से ज्यादा ब्रिलियेंट लड़की थी। अब उसके साथियों के साथ पुलिस पता नहीं क्या करतूत कर रही होगी—उन्हें मेरी मदद की जरूरत है !"

शिखा ने स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया।

इतने में कुन्दन साईकल रखकर आ गया। विनोद ने स्कूटर स्टार्ट किया और वह कुन्दन को साथ लेकर हमारी तरफ से बेखबर होकर तेजी के साथ निकल गया।

जब तक स्कूटर आंखों से ओझल नहीं हो गया तब तक शिखा विनोद की ही तरफ देखती रही। फिर उसने अपनी सूनी आंखें मेरी तरफ घुमाईं—"कौन थी यह लड़की रेखा ?"

"मैं भी उसे पूरी तरह से नहीं जानता। सिर्फ़ दो बार देखा भर है—एक बार इसी कोठी के पिछले दरवाज़े पर और दूसरी बार झील के पास के बस स्टैंड पर एक हिप्पी-से लग रहे लड़के के साथ लोकल बस का इंतजार कर रही थी !"

"काफ़ी चालू लड़की थी ?"

"कह नहीं सकता। अपने साथी लड़के के साथ बगीचे में बैठकर जो बातें वह करती रही थी उन्हें डन्डई की दीवार की ओट से मैंने भी सुना था, उन बातों से तो वह बहुत ही समझदार और साथ ही किसी अच्छे घराने की लड़की लगी थी !"

"फिर मर्डर क्यों कर दिया गया है उसका ?"

"आजकल तो मर्डर के लिए कोई वजह होना ज़रूरी नहीं है। अमृतसर के आसपास जो कुछ हो रहा है उसके पीछे कौन-सी वजह कही जा सकती है ?"

"वह तो टैररिज़्म है, विदेशी ताकतों के द्वारा भारत में अस्थिरता बनाए रखने की कूटनीति। उस कूटनीति का इस ख़ूबसूरत शहर के इस घिनोने मर्डर के साथ मैं नहीं समझती कि कोई सीधा सम्बन्ध···"

"कुछ नहीं कहा जा सकता। आतंकवाद की सीमा कोई एक शहर, एक इलाका या एक देश नहीं है, वह तो कहीं भी किसी भी रूप में प्रकट हो सकता है। पिछले दिनों इस शहर में जिस बेकसूर एम० पी० की नृशंस हत्या की गई थी उसे भूल गई हैं क्या आप ?"

"हां, याद आया, कोई शिक्षा जगत् का आदमी था शायद। आप ठीक कह रहे हैं टैरेरिज़्म का कोई करेक्टर या सिद्धान्त नहीं होता, उसे तो दुनिया में सिर्फ़ हॉरर पैदा करके रखना होता है। एक किताबी प्रेतात्मा ड्रेकुला की तरह। यू नो, ड्रेकुला बेकसूर ख़ूबसूरत लड़कियों का ख़ून पीकर उन्हें मार डालता था !"

"हां, मैंने पढ़ रखा है। और एक अंग्रेजी फ़िल्म भी देख रखी है !"

"अगर इसके हाथ कहीं से एटम बम या हाईड्रोजन बम लग जाए तो यह अपनी इस राक्षसी भूख को गिजा देने के लिए पूरे किसी एक महानगर को या पूरे किसी इलाके को जला कर खाक कर सकता है। वो तो शुक्र है कि···"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"अभी इसके पास सिर्फ़ ब्रेनगनें और स्टेनगनें ही हैं, या ज्यादा से ज्यादा दस्ती हथगोले, यही न ?" मैंने शिखा की बात पूरी करके उसके साथ सहमति जताई।

"लेकिन जब ये खतरनाक वैपन्ज धरती पर हैं तो इसकी क्या गारण्टी है कि ये टैरेरिस्टों, आई मीन, आतंकवादियों के हाथ नहीं लगेंगे ?"

मैंने देखा कि सवाल के साथ ही शिखा का चेहरा भी तमतमा आया है। उसकी आवाज़ भी काफ़ी ऊंची हो गई है। दूर सड़क पर चलते मुसाफिर भी उत्सुकता से हमारी तरफ देखे बिना नहीं रहते। इधर मुझे भूख भी सता रही थी क्योंकि शराब के बाद मुझे ठोस खाना खाने की आदत थी। इसलिए मैंने बहस को यहीं खत्म करना चाहा— "कोई गारण्टी नहीं है। लेकिन बड़े देश अभी तो इसकी चिन्ता किये बिना एड्स की चिन्ता में लगे हैं। हमारे जैसे लोगों की चिन्ता और परेशानी उनके सोचने का विषय नहीं है। इसलिए चलिए हम जाकर खाना खाते हैं और फिर पता लगाते हैं कि विनोद साहब किस परेशानी में उलझे हैं !"

चेहरे के बदलते भाव से मुझे लगा कि उसे मेरा इस तरह एक झटके के साथ बात को बीच में तोड़ना अच्छा नहीं लगा है। वह कुछ पल तो गुमसुम खड़ी रही फिर जैसे एकदम जागकर अपने हाथ सीधे उठाकर बोली—"पर मुझे तो भूख बिलकुल भी नहीं है !"

"भूख क्यों नहीं है, खाना खाने के वक्त से तो हम कभी के पार निकल आए हैं !" अब मैंने अपने स्वर में आग्रह की मिलावट की।

उसने एक बार गहरी नज़र से मेरी आंखों में देखा। वहां शायद उसे वह कुछ मिल गया जिसकी औरत को तलाश होती है। अब उसकी आवाज़ नर्म पड़ गई—"पता नहीं क्यों, मन में एक अजीब किस्म की उदासी ने अपना फन-सा फैला दिया है !"

मुझे उसका कविता की भाषा में बोलना अच्छा लगा। लगा जैसे कोई गांठ है जो वह मेरे सामने खोलना चाहती है। पर फिर भी मैंने उसके दुःख की जड़ों के आधार को टटोलना चाहा—"आप तो आगरा में रहती हैं। पंजाब के निवासियों से जाकर पूछिये उनकी क्या हालत है। कोई आदमी किसी काम से घर से बाहर निकलने के लिए मजबूर होता है तो घर वालों के लिए यह बिलकुल अनिश्चित होता है कि वह वापस घर लौट भी आएगा या कि नहीं।" बोलकर मैंने स्कूटर स्टार्ट किया और अपनत्व भरी मुस्कराहट के साथ आमंत्रित किया— "आइये, बैठिये !"

पर वह वैसे ही खड़ी रही—"आप सच मानिये, मुझे भूख बिलकुल नहीं है !"

मैंने स्कूटर बन्द कर दिया—"भूख तो मुझे भी कोई खास नहीं !"

"तो फिर ठीक है, हम लोग यहीं बैठकर विनोद का इंतज़ार करते हैं। ब्रैड है, एग्ज हैं, बटर है और प्याज़—अदरक भी जरूर होगा ही। थोड़ा-बहुत जो भी आपको चाहिए, मैं यहीं गैस पर बना देती हूं !"

"आप !"…

"क्यों, मेरा बनाया खाने में आपको कोई एतराज़ है ?"

"नहीं-नहीं, ऐसी बात नहीं है।"

"तो और क्या है ?"

सवाल खाने का बिलकुल नहीं था, अलबत्ता उस जैसी शोख रमणी के साथ एकांत में कुछ अंतरंग क्षण गुजारने का था। अन्दर की लहर ने सलाह दी— फ़िलहाल विनोद की कोठी से बढ़कर एकांत तुम्हें कहां मिलेगा पागल ? मेरे मुंह से निकल गया—"चलो ठीक है, आज मैं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी एक मुद्दत बाद रसोई में आपका हाथ बंटाता हूं !"

मुझे लगा कि मेरा प्रस्ताव सुनकर उसे कोई बहुत ज्यादा खुशी नहीं हुई है—"मुद्दत बाद क्यों ?"

"शादी से पहले मैं अपना खाना खुद ही बनाता था। कई महीने तक तो विनोद भी मेरा पेइंग गेस्ट रहा है।"

"अच्छा !" बोलकर उसने पीठ मोड़ी और पता नहीं कहां से रूमाल में बंधी डुप्लीकेट चाभी निकालकर दरवाजे की ओर बढ़ गई। मैंने स्कूटर एक तरफ खड़ा करके ताला लगाया तो देखा कि पिछले बेडरूम के फूलों वाले पर्दे अब भी उसी तरह से तने थे।

थोड़ी देर बाद ही पहले वाले टेबल पर ही लंच का सामान सजा था और मैं बची जिन को दो गिलासों में बांटकर शिखा से आग्रह कर रहा था कि वह उसे लेकर देखे तो सही, सिर्फ उसकी उदासी ही कम नहीं होगी बल्कि उसे भूख भी सताने लगेगी।

वह बार-बार मेरे इस आग्रह को ठुकरा रही थी, इस तर्क के साथ कि वह बियर के सिवा कुछ नहीं लेती। बियर भी बहुत कम लेती है, फ़ार कम्पनी सेक। लेकिन मैं उसे नशे में देखना चाहता था, और चाहता था कि एक टेलेंटिड और आधुनिक औरत के साथ खुलने का भरपूर लुत्फ़ उठाया जाय।

आखिर एक चालाकी काम आ ही गई। मैंने रसोई से एक बड़ा गिलास उठाया, उसमें जिन वाला गिलास उंडेलकर सारा पानी मिला दिया और बड़े ही नम्र शब्दों में पुनः आग्रह किया—"लो, बन गई आपकी बियर ! बियर में अलकोहल की मात्रा ही कम होती है और तो कुछ नहीं।"

मेरी इस हरकत पर उसके होंठों पर एक गाढ़ी-सी मुस्कान खिल उठी—"अगर ज्यादा नशा हो गया तो ?"

"नहीं बाबा, नशा कैसा, ये तो सिर्फ़ पानी है पानी !"

"देख लो, आप जानो !"

"हां-हां, मैं जानूं !"

"तो फिर ठीक है !" उसने चियर्ज बोलकर गिलास थोड़ा ऊपर उठाया और पहली ही सांस में आधा खाली कर गई।

मैंने पूछा—"क्यों, पानी है ना ?"

वह उंगली से होठों की तरलता साफ करती हुई फिर मुस्करायी—"हूं, कड़वाहट तो नहीं है !"

"लो, इसे खाओ !" मैंने आमलेट पर लगे मक्खन से बने सैंडविच की प्लेट उसकी तरफ़ खिसकाई।

"नहीं, अभी नहीं !" बोलकर वह खड़ी हो गई और बैडरूम में जाकर सिग्रेट का पैकेट और लाइटर उठा लायी। खड़े-खड़े सिग्रेट सुलगाकर एक गहरा कश खींचा, फिर जूड़ा खोलकर एक खास अन्दाज से बालों को दो-तीन झटके देकर उनको कन्धों पर बिखेरा और फिर साड़ी सम्भालकर कुर्सी पर बैठ गई।

मैंने भी सिग्रेट सुलगाई और जिनके साथ तम्बाकू का नशा टकराते ही मुझे लगा कि अब मैं सवाल करने की हैसियत में हूं। पहला सवाल मैंने उसकी रुचि के मुताबिक ही करना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुनासिब समझा —"विनोद को कब से जानती हैं आप ?"

उसने माथे पर सलवटें डालकर कुछ याद करने की कोशिश की फिर फ़ुसफ़ुसाहट के लहजे में जवाब दिया—"पिछले जन्म से !"

मेरे होंठों पर बरबस मुस्कराहट फैल गई। उस मुस्कराहट को देखकर उसकी भवें थोड़ी टेढ़ी हो गईं—"क्यों, पिछले जन्म में विश्वास नहीं है आपको ?"

"क्यों नहीं, ज़रूर है !" मैंने इस अनपेक्षित विषय को यहीं रोकना चाहा।

"तो बस, फिर समझ लीजिये कि पिछले जन्म में विनोद एक न्यूटर···हां न्यूटर··· इसकी हिन्दी क्या होगी ?"

मैंने संकोच के साथ जवाब दिया—"हिजड़ा !"

"हां, हिजड़ा ! विनोद पिछले जन्म में एक हिजड़ा था और मैं धोखे से उसके साथ ब्याही एक खूबसूरत जवान लड़की !"

मेरी मुस्कराहट बेबस हंसी में बदल गई—"क्या कह रही हैं आप ?"

"ठीक कह रही हूं !"—उसने गिलास उठाकर दो घूंट और भरे—"मैं पिछले जन्म से अपनी जवानी की दवा पिलाकर उसमें पुंसत्व जगाने की कोशिश कर रही हूं, अपना सती धर्म निभा रही हूं !"

नशे में शिखा का यह रूप भी हो सकता है, इसकी तो मैंने कल्पना तक नहीं की थी। विनोद की सैक्सुअल इम्पोटेंस को तो मैं काफी अच्छी तरह से जानता था, पर शिखा भी मेरी तरह उसके जीवन के इस महत्त्वपूर्ण रहस्य को जान गई है, इसका मुझे रत्ती भर भी एहसास नहीं था। मेरा मन कौतूहल से भर उठा। उस कौतूहल को शब्दों में न आने देने की भरपूर कोशिश करते हुए मैंने नया सवाल किया—"इस जन्म में अब उसकी हालत ठीक है क्या ?"

"नींद की हालत में वह पूरी मर्दानगी से भरा होता है लेकिन आंख खुलते ही सब कुछ गायब हो जाता है, जैसे हवा में तैरता हुआ बैलून गैस निकल जाने पर धरती पर आ बिछता हो।"

"ये क्या बात हुई ?"

"बहुत से लोगों को ऐसा होता है।"

"तब तो इसका कोई न कोई इलाज भी होगा ?"

"क्यों नहीं है !"

"क्या है ?"

"यही कि ऐसे आदमी की ज़िन्दगी में सपनों के संसार को जागृत किया जाए।"

"मतलब ?"

"ये लोग जिस तरह का संसार अपने सपनों में देखते हैं, बिलकुल वैसा ही या उससे मिलता-जुलता संसार अगर इनकी वास्तविक ज़िन्दगी में ला दिया जाए तो ये लोग स्वस्थ हो सकते हैं !"

"तो आप विनोद की ज़िन्दगी में उसके सपनों के संसार को जगा रही हैं ?"

"कोशिश तो कर रही हूं।"

"खुदा करे आपको जल्द ही सफलता मिले और हमारे मित्र भी वह सब देख सकें जिसे लेकर वह मेरा मज़ाक बनाता रहता है।"

"मज़ाक ?"

"हां, सपनों को लेकर वह मेरा मज़ाक बनाता है !"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"मैं समझी नहीं !"

"आजकल मुझे बहुत लम्बे-लम्बे सपने आने लगे हैं, और कई बार सपनों में देखा बहुत कुछ वास्तविक जिन्दगी में भी सामने आ जाता है। वह कहता है कि इसमें अलौकिकता नाम की कोई चीज नहीं है, सब कुछ मेरे अतीत या मेरी अधूरी उत्कण्ठाओं का रिफ़्लेक्शन है !"

"वे काफी हद तक ठीक ही कह रहे हैं। वास्तव में हमारा अन्तरमन हमारे अभावों की पूर्ति हमारे लिए सपनों के माध्यम से करता है।"

"इसका मतलब है सपने हमारे अभावों की उपज हैं ?"

"मनोविज्ञान तो यही कहता है !"

"आपका अपना अनुभव क्या है ?"

"मैं तो यही समझती हूं कि भोजन, हवा, पानी और सेक्स की तरह आदमी के लिए सपने भी एक बुनियादी जरूरत हैं। इस धरती पर आदमी इतने अभावों और दबावों में अपनी जिन्दगी बसर करता है कि अगर वह सपने न ले तो पागल हो जाए !"

"यह आपने बिलकुल नयी बात कही है !"

"कह नहीं सकती, हो सकता है पहले से ही किसी की कही बात पढ़ने के बाद अन्तर्मन-में कहीं एहसास के रूप में जमी रह गई हो और आपको वह पहली बार सामने आने के कारण नयी लग रही हो !"

"ये शब्द आपके बड़प्पन को…"

"चलो छोड़ें इन बातों को, खाना खाएं, बहुत भूख लगी है !"

अब उसने मेरे द्वारा खिसकाई सेंडविच की प्लेट को और आगे खिसकाया और उसपर भूखी बिल्ली की तरह टूट पड़ी।

मैंने भी आलू के बने पकौड़े अपनी प्लेट में उतारे और सॉस डालते हुए जैसे किसी अनजानी घटिया भावना से प्रेरित होकर एक जलता हुआ सवाल उसकी तरफ दाग़ दिया—"लेकिन आप तो शादीशुदा हैं, और आपके तो दो बच्चे भी शायद काफ़ी बड़े…"

वह दांत और होंठ भींचकर भी खिलखिलाने की कोशिश करने लगी। जब ग्रास गले के नीचे उतर गया तो खुली हंसी में से ही शब्दों को सानती हुई बोली—"कैसी शादी, कैसे बच्चे, मैं तो जन्म-जन्मांतरों से कुंवारी हूं !"

अब मुझे उससे डर लगने लगा। अभी तक पिछले बेडरूम के फूलों वाले पर्दे, जो मेरी आंखों में बार-बार कौंधते रहे थे ऐसे काले पर्दों में बदल गए जिनपर फूलों की बजाय खतरा दिखाने वाले खोपड़ी के निशान बने हों। मेरी आवाज में तो भारीपन आया ही, साथ ही शब्दों में भी छोटापन उतर आया—"अपने इस शानदार प्रयोग में आपको कोई सफलता भी मिली ?"

उसने गिलास फिर उठा लिया पर खाली देखकर उसी तरह रख दिया—"बहुत जगह मिली है लेकिन इस जगह अभी बहुत ज्यादा नहीं मिली !"

"क्या दूसरी किसी जगह भी…?" हलक की खुश्की की वजह से मेरे मुंह का ग्रास तालू के साथ चिपककर रह गया।

मेरे अधूरे वाक्य के जवाब में फिर उसने कविता की भाषा अपनाई—"दीपक साहब, हम तो फूलों और फलों से लदा एक पेड़ हैं जिस पर से कोई भी फल और फूल तोड़ सकता है लेकिन पेड़ का कुछ नहीं बिगड़ता !"

"ये क्या कह रही हैं आप ! हमारे इस देश के रूढ़िवादी समाज में अगर कोई औरत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर पुरुष के साथ···"

"दीपक साहब !" यह सम्बोधन उसका काफ़ी ऊंची आवाज में था, पर आगे की बात कहने से पहले उसने पानी पिया, होंठ साफ किये और फिर अपनी आवाज़ को संयत करके बोली—"माई डियर दीपक, सर्जन किसी सड़े हुए घाव का आपरेशन करता है लेकिन बाद में जाकर साबुन से अपने हाथ धो लेता है, उसका क्या बिगड़ता है ?"

"सर्जन और औरत में समानता को आप···"

उसने फिर मुझे आगे नहीं बोलने दिया—"औरत इस सड़े हुए पुरुष प्रधान समाज की सर्जन ही तो है जो आत्माओं के घावों का आपरेशन करती है। कभी-कभी घाव के कुछ विषाणु किसी सर्जन पर भी आक्रमण करते हैं। लेकिन सर्जन एक थोड़े ही है, एक पूरी फौज है समाज में सर्जनों की !"

इस बातचीत के प्रभाव में मुझे लगा कि मेरी भूख मारी गई है और मैंने भी खाने की तरफ से हाथ हटाकर पानी की तरफ बढ़ाया। औरत का ऐसा विचित्र रूप मैंने ज़िन्दगी में पहली बार देखा था। मेरा ख्याल था कि विनोद इस भोली-भाली औरत के साथ खेल रहा होगा, यह तो कल्पना में भी नहीं सोचा था कि यह एक खास किस्म की डॉक्टर बनकर उसकी नपुंसकता का ईलाज कर रही होगी। मैं अपनी ग़लती पर मन ही मन पश्चाताप करने लगा कि ऐसी नेक औरत को मुझे शराब नहीं पिलानी चाहिए थी। मेरे दिल में आया कि रसोई में जाऊं और दो नीम्बू पानी में डालकर इसे पिलाऊं। मैं उठकर रसोई घर में गया भी लेकिन नीम्बू तलाश करने में मुझे थोड़ी देर लग गई। जब लौटकर आया तो वहां की बदली हुई परिस्थिति को देखकर दंग रह गया। टेबल पर शिखा का केवल रूमाल पड़ा था और वह टेबल पर पड़ी मेरी चाभियां उठाकर बाहर खड़ा स्कूटर लेकर कहीं जा चुकी थी। □

कश्मीरी साहित्य के अध्येताओं के लिए एक
अनिवार्य पुस्तक

कश्मीरी साहित्य का इतिहास

लेखक : डॉ० शशिशेखर तोषखानी

प्रकाशक : जे० एण्ड के० अकादमी आफ़ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज, जम्मू

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जन्म-शताब्दी पर विशेष

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में राष्ट्रीय भावना

□ डॉ० विद्यानाथ गुप्त

भारतवर्ष की राष्ट्रीयता का इतिहास राष्ट्रीय जीवन के उत्थान-पतन का इतिहास है। राष्ट्रीयता की यह धारा चिरकाल से किसी न किसी रूप में प्रवाहित होती रही है। कभी तो कल-कल, छल-छल करती हुई पर्वतीय नदी के समान यह द्रुत गति से बहती हुई दिखाई देती है और कभी-कभी सरस्वती के समान अन्तर्मुखी होकर मन्थर गति से गतिशील होती रहती है। वास्तव में यह प्राचीन होकर भी नवीन है और प्रवाहमयी है।

अंग्रेजी राज्य की स्थापना होने पर भारतीय जनता में एक सुदृढ़ राष्ट्रीय चेतना का विकास होने लगा था। ब्रिटिश सरकार की कूटनीतियों तथा अनेक अमानवीय कुकृत्यों के कारण भारतीय जनता में आक्रोश बढ़ता जा रहा था। बंग-भंग की योजना, रोलट एक्ट, सिडिशस मीटिंग्ज एक्ट, जलियांवाला बाग का हत्याकाण्ड, लाला लाजपत राय का निधन, गांधी के सहित असंख्य लोगों को जेल में ठूंसने, लाठी-गोली आदि विदेशी-राज्य की दमन-नीति की कड़ियां थीं। इन्हीं विषम परिस्थितियों में मैथिलीशरण गुप्त रंगमंच पर आए जिन्होंने अपनी काव्य-कला के माध्यम से परतन्त्रता की लौह-शृंखला में आबद्ध भारतवासियों में राष्ट्रीयता का संचार करने में सफलता पायी।

गुप्त जी अनुभव करते थे कि समाज ही राष्ट्र है। अतः राष्ट्रीयता के उत्थान के लिए स्वस्थ समाज की आवश्यकता होती है। परन्तु वह देख रहे थे अपने भारतीय समाज को, जो अनेक कुरीतियों अथवा संकीर्णताओं के कारण बिल्कुल जीर्ण-शीर्ण हो चुका था। कहीं बाल-विधवाओं का करुण क्रन्दन। कहीं बालविवाह अथवा अनमेल विवाह के अमानुषिक परिणाम, कहीं छूत-छात का भयंकर रोग और कहीं अन्धविश्वासों तथा रूढ़ियों से जकड़ा हुआ समाज। गुप्त जी ने अपने काव्य में एक ओर इन विकृतियों का यथार्थ चित्रांकन किया और दूसरी ओर एक सुशिक्षित एवं सभ्य समाज की कल्पना की जिसके बिना राष्ट्रीयता के विकास का चिन्तन करना सम्भव नहीं था। अविद्या तथा अज्ञान के कारण प्राणहीन, मृतप्राय समाज की कटु आलोचना करते हुए गुप्त लिखते हैं—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सब अंग दूषित हो चुके हैं, अब शरीर समाज के,
संसार में कहला रहे हैं हम लकीर फकीर के।
क्या बाप-दादों के समय की रीतियां हम तोड़ दें,
वे रुग्ण हों तो क्यों न हम भी स्वस्थ रहना छोड़ दें।।

गुप्त जी जानते थे कि समाज रूपी रथ को चलाने के लिए नारी का योगदान कितना महत्त्वपूर्ण है ? परन्तु इस देश की नारी तो युग-युग से पुरुष की कठोरताओं का शिकार होने के कारण अत्यन्त शोचनीय स्थिति को प्राप्त हो चुकी है। ऐसे निन्दनीय समाज का उद्धार कैसे सम्भव हो सकता है ? इसीलिए समाज के इस आवश्यक अंग को फिर से सजग तथा सचेत करके उसे पुरुष के समान ही प्रतिष्ठित करने के लिए उन्होंने उपेक्षित नारी के प्रति विशेष सहानुभूति प्रकट की। अनेक उपेक्षित नारी पात्रों को अपने काव्यों में गौरव प्रदान कर उन्होंने नारी-जीवन के प्रति श्रद्धा एवं संवेदना का परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने **भारत भारती** में बाल विवाह **हिन्दू** नामक काव्य में अनमेल विवाह, **पंचवटी** तथा **जयभारत** में बहु-विवाह आदि कुप्रथाओं पर प्रकाश डालने का सफल प्रयास किया है। इतना ही नहीं छूत-छात की विषम समस्या पर भी गुप्त जी चिन्तित थे। इसीलिए 'अनघ', 'गुरुकुल', 'जयभारत' 'हिन्दू' आदि काव्यों में इस पर उन्होंने चर्चा की है। वह छुआ-छूत, ऊंच-नीच आदि भेदभाव की क्षुद्र भावना को उचित नहीं समझते थे। 'गुरुकुल' में गुरु गोविन्द सिंह छुआ-छूत की निन्दा करते हैं—अछूत तो समाज का अटूट अंग हैं—

जिन्हें शूद्र कहते हैं वे ही
हैं समाज के सच्चे अंग,
प्रथम पैर ही पूजते हैं जो
ले चलते हैं सब कुछ संग।

इस प्रकार गुप्त जी ने समाज की उन्नति को राष्ट्र की उन्नति समझकर एक उन्नत एवं सुसंस्कृत समाज की कल्पना की जिसके बिना राष्ट्र एवं देश का कल्याण संभव नहीं था।

गुप्त जी ने भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावों के निर्माण के लिए एक ओर प्राचीन भारत का गुणगान किया और दूसरी ओर वर्तमान शोचनीय दशा पर आंसू बहाते हुए लोगों को आह्वान किया—

हम क्या थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी,
आओ मिल करके विचारें ये समस्याएं सभी।

वास्तव में राजनैतिक दासता के उस युग में भारतवासियों को जागृत करने का उनके पास एक सशक्त साधन था—'अतीत का गौरव-गान'। वह प्राचीन भारतीय संस्कृति के दीवाने थे। उन्हें अपनी सर्वांगीण, सम्पन्न तथा महिमामयी संस्कृति पर गर्व था इसीलिए वह भारतीय संस्कृति का अमर संदेश भारतीय जनता के मानस-पट पर अंकित करने में सफल हुए। उन्होंने जन-जन को सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाकर उसमें देश की स्वतंत्रता की अभूतपूर्व तड़प उत्पन्न कर दी।

गुप्त जी को अपनी मातृभूमि प्राणों से भी प्यारी है। इसका कण-कण वन्दनीय है। इस का गिरिराज हिमालय, इसकी छलछलाती हुई गंगा-यमुना आदि अनेक नदियां, इसके लहलहाते हुए खेत, इसके पशु और पक्षी तथा वन-वनान्तर सभी कवि को एक अद्भुत प्रेरणा देते हैं। इसीलिए वह उसका सदा प्रशस्ति-गान करता रहता है। 'मंगल घट' की कुछ पंक्तियां

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

द्रष्टव्य हैं—

जय-जय भारत-भूमि भवानी।
अमरों ने भी तेरी महिमा बारम्बार बखानी॥
तेरा चन्द्र-वदन वर विकसित शान्ति-सुधा बरसाता है;
मलयानिल-निश्वास निराला नवजीवन सरसाता है।
हृदय हरा कर देता है यह अंचल तेरा धानी;
जय-जय भारत-भूमि भवानी।

गुप्त जी को भारतीय संस्कृति, शृंगार, तपोनिष्ठ ऋषि मुनि, वीरता के पुंज तेजस्वी वीरवर तथा सूर सम्राट प्रतापी बड़े-बड़े भूपति तथा सेनानी भी याद आते हैं। अतीत में उन्हें तत्कालीन विपरीत परिस्थितियों में आलोक की किरण दिखाई देती थी जिसका सहारा लेकर वह निराश भारतीय जनता में पुनः खोया हुआ बल, बुद्धि एवं वैभव प्राप्त करने की बलवती उमंग पैदा करने में सफल हुए। 'भारत-भारती' में कवि के भाव अवलोकनीय हैं—

जो एक सौ-सौ से लड़े ऐसे यहां पर वीर थे,
सम्मुख समर में शैल सम रहते सदा हम धीर थे।
शंका न थी, जब-जब समर का साज भारत ने सजा,
जावा, सुमात्रा, चीन, लंका, सब कहीं डंका बजा॥

उसी रत्नगर्भा मातृभूमि की वर्तमान दयनीय दशा देखकर कवि का मन क्षुब्ध हो जाता है और वह अपने मन के भाव इन पंक्तियों में प्रकट करने लग जाता है—

इस रत्नगर्भा भूमि पर हा दैव! ऐसी दीनता,
है शोच्य कृषि से कम नहीं व्यापार की भी हीनता।
जिस देश के वाणिज्य की सर्वत्र धूम मची रही,
क्या पर-मुखापेक्षी नहीं है आज पद-पद पर वही॥

गुप्त जी जानते थे कि इस देश को विपन्न बनाने वाला अंग्रेज था; परन्तु महारानी विक्टोरिया से दूसरे भारतवासियों की तरह उन्हें भी अनेक आशाएं थीं। परन्तु शीघ्र ही उन की आशा निराशा में बदल गई। एक ओर भारतवासी आर्थिक दृष्टि से क्षीण हो चुके थे दूसरी ओर शासन का कठोर दमन-चक्र...जैसे-जैसे ब्रिटिश सरकार की काली करतूतों का चिट्ठा जनता के सम्मुख नंगा होने लगा वैसे ही भारतवासी स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर प्राणों की आहुतियां देने के लिए कटिबद्ध होने लगे। गांधी जी के नेतृत्व पर उन्हें विश्वास था। अतः राष्ट्रीय-चेतना की एक लहर समस्त देश में व्याप्त होने लगी फिर गुप्त जी राष्ट्र के हित अपना तथा अपने भाई सियाराम शरण गुप्त का जीवन-दान दे चुके थे। अतः उन्होंने अपनी लेखनी में क्रान्ति का स्वर भरकर भारतवासियों में देश-भक्ति की ज्योति प्रज्वलित करने का अनुपम प्रयास किया।

बंग-भंग के परिणामस्वरूप देश में स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। राजनैतिक नेता आर्थिक दुर्दशा को ही राजनैतिक अधोगति का मुख्य कारण मानते हुए विदेशी वस्तुओं के परित्याग का प्रचार करने लगे। राष्ट्र-कवि गुप्त कब पीछे हटने वाले थे? विदेशी वस्तुओं तथा विदेशी वेश-भूषा और भाषा पर आस्था रखने वालों पर तीक्ष्ण व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा—

"केवल विदेशी वस्तु ही क्यों, अब स्वदेशी है कहां,
वह वेश-भूषा और भाषा, सब विदेशी है यहां।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गुण मात्र छोड़ विदेशियों के हम उन्हीं में सन गए,
कैसी नकल की वाह, हम नक्काल पूरे बन गए।

देश की आर्थिक दशा ने भारतवासियों की कमर तोड़ दी थी—उस पर महामारी और अकाल। समस्त भारतवासी अर्थाभाव के कारण अत्यन्त दुःखी और पीड़ित थे—विशेष कर किसान। उन बेचारों को तो मुट्ठी भर अपना पैदा किया हुआ अनाज भी दो जून खाने को नहीं जुड़ता था। जब देश के प्रमुख अंग की ऐसी दयनीय दशा हो रही हो, जब वह दाने-दाने को तरसता हो, तो ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की कल्पना करना निर्मूल था—गुप्त जी इन सभी हृदयविदारक अवस्थाओं का मार्मिक चित्रण अपने काव्य में करते हैं—

"पानी बना कर रक्त का कृषि, कृषक करते हैं यहां,
फिर भी अभागे भूख से दिन-रात मरते हैं यहां।
सब बेचना पड़ता उन्हें निज अन्न वह निरुपाय हैं,
बस चार पैसे से अधिक पड़ती न दैनिक आय है।।

फिर क्या था? मरता क्या न करता। विवश होकर गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन का शंखनाद कर दिया—स्वराज्य की पुकार चारों ओर सुनाई देने लगी—कवियों ने कंधों से कंधा मिलाकर नेताओं का कार्य सुगम करने में खुलकर सहयोग दिया—

खुला यह कहते हैं आज अब हम,
स्वराज्य लेंगे स्वराज्य लेंगे।
करेंगे अब न आवाज़ मध्यम,
स्वराज्य लेंगे स्वराज्य लेंगे।।

गुप्त जी की प्रभावोत्पादक हुंकार कोटि-कोटि हृदयों को स्पर्श करती हुई इन शब्दों में गूंज उठी—

'धरती हिल कर नींद भगा दे,
वज्रनाद से व्योम जगा दे।
दैव और कुछ लाग लगा दे,
निश्चय करूं कि भारत हूं मैं,
हूं या था, चिन्तारत हूं मैं।'

यह अभियान समस्त भारतवासियों की एकता के बिना सफल नहीं हो सकता था। अंग्रेजों की कूटनीति थी—बांटो और शासन करो। सभी नेतागण इस नाजुक बिन्दु के प्रति सजग थे। जब तक हिन्दू तथा मुस्लिम एक होकर इस संकट का मुकाबला न करें तब तक सफलता कैसे प्राप्त हो सकती है? गुप्त जी की काव्य-साधना की मूल-चेतना थी—'राष्ट्रीयता', इसीलिए 'गुरुकुल' में दोनों जातियों के एकीकरण पर बल देते हुए उन्होंने लिखा—

हिन्दू मुसलमान दोनों अब छोड़ें विग्रह की नीति।
प्रकट की गई है यह केवल अपने वीरों के प्रति प्रीति।।

यद्यपि वह परम वैष्णव थे और भारतीय संस्कृति की पूजा-वन्दना वह अपना धर्म समझते थे परन्तु उनका राष्ट्रीय दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक था। वह सदा समस्त धर्मों तथा सम्प्रदायों के प्रति उदार भावना रखते थे। समस्त देशवासियों में एकता की मंगल-कामना करते हुए वह लिखते हैं—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जाति धर्म या सम्प्रदाय का, नहीं भेद व्यवधान यहां,
सबका स्वागत, सबका आदर, सबका सम सम्मान यहां।
राम-रहीम, बुद्ध ईसा का सुलभ एक-सा ध्यान यहां,
भिन्न-भिन्न भव संस्कृतियों के गण गौरव का ज्ञान यहां।
नहीं चाहते बुद्धि वैर की, भला प्रेम उन्माद यहां,
सबका निज कल्याण यहां है, पावें सब प्रसाद यहां।।

निश्चय ही गुप्त जी राष्ट्रीय कवि थे, भारत मां के सच्चे पुजारी थे जिन्होंने राष्ट्रीय-भावों से प्रेरित होकर देशवासियों को राष्ट्रीय-जीवन का संदेश देकर फिर से जीवित तथा स्वतन्त्र रहने योग्य बना दिया। यद्यपि वह आज हमारे मध्य नहीं हैं परन्तु उनका राष्ट्रीय प्रयास भारतीय साहित्य तथा इतिहास के गौरव को युग-युग तक अमरता प्रदान करता रहेगा। □

हिन्दी
डोगरी
कश्मीरी
भाषाओं के साहित्य और
इनकी भंगिमाओं की पहचान के लिए
मंगवाएं
हमारा साहित्य
[वार्षिक संकलन]
के विविध अंक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेख

आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब-योजना

□ डॉ० सत्यपाल श्रीवत्स

आधुनिक हिन्दी कविता की शिल्परचना में बिम्ब-विधान का विशेष महत्त्व है। वस्तुतः हिन्दी साहित्य में बिम्ब-विधान छायावाद की प्रतिक्रिया के रूप में आया। बदलते युग के वातावरण में छायावादी कवि एक विचित्र प्रकार की मानसिक कुण्ठा अनुभव करने लगा था। वह अब प्रकृति-सौंदर्य को सम्भालकर उसे अपनी कविता में निभाये रखने का नितान्त असफल प्रयत्न कर रहा था। उसके सौन्दर्य-वोध का क्षेत्र अब उसे सर्वथा सीमित एवं संकीर्ण होता हुआ प्रतीत हो रहा था। इस प्रकार की घुटन की स्थिति से ऊबकर सुमित्रानन्दन पन्त आगे आए और उन्होंने 'रूपाभ' का सम्पादन आरम्भ किया। 'रूपाभ' नवीन चेतना के जागरण में सर्वप्रथम माध्यम सिद्ध हुआ। 'रूपाभ' अपने नाम से यह घोषणा करने लगा था कि छायावादी 'आभा' नवयुग के बदलते सन्दर्भों में सर्वथा नाकारा सिद्ध हो रही है अतः उसके साथ यदि 'रूप' का भी संयोग हो जाए तो निश्चय ही कविता पुनः इस धरती और उसके लोगों की वस्तु बन सकती है।

छायावादी कविता में चाक्षुष-बिम्बों की ही प्रचुरता थी। क्योंकि सौंदर्य का घनिष्ठ सम्बन्ध दृष्टि से है और दृष्टि किसी रूप या चित्र को आत्मसात करती है, अतः इस प्रकार के बिम्ब-विधान रूपतत्त्व पर आधारित होते हैं। यही कारण है कि इस प्रकार के चाक्षुष बिम्बों में चित्रात्मकता का ही आधिपत्य रहता है। यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि जहां छायावादी कवि केवल रूप में ही सौंदर्य के दर्शन करता है, कुरूप में नहीं, वहां नया कवि भद्दी, भोंडी तथा निकृष्ट वस्तु की अन्तरात्मा में पैठकर उसे भी टटोलता है, उसकी धड़कन सुनने का प्रयास करता है, उससे सम्वेदना प्रकट करता है। यही कारण है कि उसका सौंदर्य छायावादी कवि की अपेक्षा अखण्ड तथा विशाल है। इस प्रकार स्पष्ट है कि हिन्दी-काव्य में छायावाद में जो स्थान अमूर्त-सौंदर्य का था वह नूतन कविता में मूर्त सौंदर्य ने ग्रहण कर लिया। छायावादी कविता में सौंदर्य का माप-दण्ड भाव-तरलता थी जबकि नवीन कविता में वस्तु की दृढ़ तथा सशक्त रूपरेखा सौंदर्य का माप-दण्ड बन गयी।

प्रगतिवाद का आरम्भ होने पर कवियों ने जन-भाषा तथा जनजीवन के सहज बिम्ब

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपनी कविता में उतारे हैं। प्रारम्भ में छायावाद, प्रयोगवाद, तथा प्रगतिवाद की तीनों प्रवृत्तियां अस्पष्ट थीं। यह प्रतीत होने लग पड़ा था कि एक अमूर्त काव्य के माध्यम से नयी चेतना का विकास हो रहा है।

विज्ञान के इस युग में प्रत्येक वस्तु बड़ी ही तीव्र गति से नये आयाम ले रही है। ऐसे में प्रश्न यह उठता है कि वस्तु विशेष का बाह्य अधिक सौंदर्यपूर्ण है या अन्तर। इसके उत्तर में कहना होगा कि इस सम्पूर्ण परिवर्तन से होने वाली सुख-दुख की अनुभूति मानव-मन को अत्यधिक आंदोलित करती है, इसीलिए मानव मन ही प्रमुख है, परन्तु यह परिवर्तनशीलता मानव मन से कैसे सम्बन्धित है? यह प्रश्न कवि के हृदय को भरसक मथा करता है। वह अपने परिवेश में वर्तमान तथा प्रत्येक क्षण में भोगे हुए यथार्थ से आंदोलित होकर कविता करता है। ऐसी कविता ही उसके हृदय का स्वतः स्फूर्त प्रवाह है।

इसी सन्दर्भ में यह भी ध्यातव्य है कि आज विश्व के किसी भी कोने में होने वाली सुखद और दुखद सभी प्रकार की घटनाओं से हमारा जीवन प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। आज विज्ञान चांद को छूकर अपने हाथ मंगल ग्रह तक पसार रहा है। हमारे सौर मण्डल से ग्रह-उपग्रह, धरती पर समुद्र, दीपक, धुआं, गांव झोंपड़ी, नदी, पर्वत, द्वीप, कोयल की कू-कू आदि सभी हमारे सामने विद्यमान तो हैं, परन्तु इनकी हलचल के प्रति साधारणतः प्रतिक्रिया इतनी तीव्र नहीं होती थी जितनी आज के कवि के हृदय में होती है, जो एक विचित्र अनुभूति तथा सजगता उत्पन्न करके कवि की कविता में बिम्ब रूप में उतर आती है। आधुनिक हिन्दी कविता की इस प्रकार की अनुभूति एकदेशीय नहीं अपितु सार्वदेशीय है। इसीलिए तो माय कोवस्की के इस निम्नलिखित पद में उसी अनुभूति की अभिव्यक्ति हो रही है जो हिन्दी के आधुनिक कवियों के हृदयों को सदा झकझोरती रहती है, जिससे नये बिम्बों का सृजन होता है—

मुझे लगता है, मेरा मैं,
मुझसे बहुत छोटा है।
इतने में मुझमें से
शरीरी एक राट् बरबस निकल पड़ता है।"

इसी प्रकार एक जापानी कवि भी अपने हृदय की अनुभूति यूं व्यक्त करता है—

"वह नर जो नारी को देखते ही,
हाथ को कंपाने और स्वर को दर्शाने लगे
अस्तित्व में नहीं रहा।"

अतः स्पष्ट है कि यह नवीन चेतना का मान सर्वव्यापी बनता जा रहा है। हमारे दैनन्दिन जीवन में हमारे कानों, आंखों, प्राणों और जीभ तथा त्वचा को जो कुछ प्रतिक्षण स्पर्श कर रहा है वही, चाहे वह कटु हो या मधुर, रूपवान हो या भद्दा, कवि के हृदय में एक विचित्र अनुभूति जागृत करता है, जो कवि की कविता में बिम्ब बनकर आती है।

यहां प्रयोगवादी कविताओं की श्रृंखला के प्रथम कवि अज्ञेय की कविता में रात्रिकालीन परिवेश में उतरे हुए एक बिम्ब का उदाहरण प्रस्तुत है—

"झींगुरों की लोरियां
सुला गयी थीं गांव को
झोंपड़ें हिंडोलों-सी झुला रही हैं—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

धीमे-धीमे
उजली कपासी धूम डोरियां।"

इस सन्दर्भ में इनकी 'सांप' कविता में नागरिक सभ्यता के जहरीलेपन का बिम्ब-विधान भी द्रष्टव्य है।

अज्ञेय ने आधुनिक कविता को अलंकृत करने के लिए जो सामग्री जुटाई है उसमें नवीन अप्रस्तुतों तथा प्रतीकों के साथ नवीन बिम्बों ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि अज्ञेय के बिम्ब-विधान में प्रौढ़ता तथा कलात्मकता है। अज्ञेय का कवि अपने परिवेश में सूक्ष्म बिम्बों को परखने के लिए जागरूक ही नहीं, सजग भी है। यही कारण है कि इन्होंने आधुनिक कविता को एक नईदिशा दी है। आधुनिक कविता को अलंकृत करने के लिए इन्होंने जो उपकरण जुटाए हैं, उनमें नवीन बिम्बों, नवीन अप्रस्तुतों और प्रतीकों का विशेष स्थान है, जिससे हिन्दी काव्य जगत प्रभावित हुआ है।

इनके द्वारा सम्पादित सप्तकों में नवीन बिम्बों की अद्वितीय छटा सहज ही ध्यान आकर्षित करती है। इनके बिम्ब-विधान की विशेषता सांकेतिकता के कारण और अधिक सघन तथा चमत्कारपूर्ण हो गई है।

इस सन्दर्भ में अज्ञेय जी के साथ गिरिजाकुमार माथुर, शमशेर बहादुर सिंह, धर्मवीर भारती, जगदीश गुप्त तथा लक्ष्मीकांत वर्मा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

लक्ष्मीकांत वर्मा नयी कविता के भाष्यकार के रूप में विख्यात हैं। यह मुख्यतः भाव-विमुखवादी कवि हैं। यह काव्य-चित्रण में बिम्बों की सृष्टि करते समय व्यंग्य का प्रयोग मुख्य रूप से करते हैं, परन्तु कहीं-कहीं इनके व्यंग्यों में तिक्तता पूर्णतया नहीं उभर पाती है, जिससे इनके बिम्ब उपहासास्पद बन जाते हैं। नीचे दिये गए उदाहरण से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है—

"मैं देख रहा हूं दूर, बहुत दूर
धूल में टायर की छाप-सी उभर
एक गाढ़ी काली जंजीर में,
दो बादलों के टुकड़े फंस गए हैं।"

लक्ष्मीकांत वर्मा की कविता में कहीं-कहीं उपमान-सादृश्य में त्रुटि आ जाने से बिम्ब-उपहासास्पद बन जाते हैं।

शमशेर बहादुर सिंह की कविता में प्रणय, शृंगार, राष्ट्रीयता, प्रकृति-चित्रण, सर्वहारा वर्ग का संघर्षशील जीवन आदि का चित्रण मुख्यता से हुआ है। इन विषयों से सम्बन्धित कविताओं में बिम्ब-योजना बड़ी सजगता तथा कौशल के साथ रची गई है। प्रकृति-चित्रण में भी कवि शमशेर बड़े कुशल हैं। इनकी एक कविता में प्रातःकालीन आकाश के चित्र में बिम्ब-विधान में व्यंजित काव्य कौशल बड़ा अनूठा है—

"प्रातः नभ था, बहुत नील शंख जैसे,
भोर का नभ, राख से लीपा हुआ चौका।
(अभी गीला पड़ा है)
बहुत काली सिल ज़रा से लाल केसर से—
कि जैसे धुल गई हो,
स्लेट पर या लाल खड़िया चाक मल दी हो किसी ने।"

इस पद्यांश में प्रातःकालीन आकाश और उसके परिवर्तित होते हुए रंगों की बिम्ब-रचना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सहज ही हमें आकर्षित करती हुई एक नये लोक में ले जाती है।

कवि शमशेर ने नये बिम्बों की धुन में अपनी कविता में इतने क्लिष्ट तथा दुरूह प्रयोग किए हैं, जिनसे अभिव्यक्ति में भारी उलझन आ जाती है। इसीलिए कई आलोचक इनकी तुलना रीतिकालीन चमत्कारी कवि आचार्य केशव से करते हैं। इन पर अंग्रेजी कवि एज़रा पाऊंड और उर्दू के प्रसिद्ध कवि मिर्जा ग़ालिब तथा हिन्दी के जाने-माने श्रेष्ठ कवि महाप्राण निराला का स्पष्ट प्रभाव माना जाता है।

वर्तमान हिन्दी कविता में सहज बिम्बों के प्रयोग में भवानी प्रसाद मिश्र को सबसे अधिक सफलता मिली है। इनकी प्रसिद्ध कविता 'फूल और दिन' में से एक अंश प्रस्तुत है—

'सुबह होते ही फूल
हवा में झूल,
खोल देता है अपने दल
ओस पी लेता है केवल
पियासा रवि
फैल जाती है छवि।"

कुंवर नारायण सिंह ने भी नये बिम्बों के प्रयोग में पर्याप्त ख्याति अर्जित की है। इनकी 'ओस न्हायी रात' कविता में एक सद्यःस्नाता सुन्दरी के रूप में सुन्दर बिम्ब-रचना की गयी है—

"ओस न्हायी रात
गीली सकुचाती आशंक
अपने अंग पर शशि-ज्योति की
संदिग्ध चादर डाल
देखो,
आ रही है व्योम गंगा से निकल।"[1]

इनकी कविता में दर्द की अनुभूति अपेक्षाकृत अधिक तीव्र होने से कहीं-कहीं बिम्ब-योजना में भद्दापन आ गया है। यह उदाहरण इस आशय का ज्वलंत प्रमाण है—

चांद से लुढ़की पड़ी छाया घनी,
एक बूढ़ी रात ओढ़े चांदनी।
एक फीकी किरण सूजी लाश पर,
स्वप्न कोई हंस रहा आकाश पर।"

कुंवर नारायण सिंह की कविता में सांसारिकता तथा आध्यात्मवाद का समन्वय इसके बिम्ब-विधान में एक प्रकार की अनुपमता ला देता है। नवीन शिल्प-विधान तथा भाषा-शैली की दृष्टि से यह आधुनिक कवियों में उल्लेखनीय हैं। इनकी भाषा में प्रांजलता तथा कल्पना में विशेष चमत्कार है। अप्रस्तुत योजना प्रतीक-विधान तथा बिम्ब-रचना के कारण भी यह हिन्दी कविता में अपना विशेष स्थान रखते हैं।

जगदीश गुप्त नवीन कविता के आचार्य और कवि दोनों हैं। इनकी कविता पर चारों ओर के यथार्थ की स्पष्ट छाप है। यह भोग और सुख में भी पीड़ा और दायित्व ढूंढ़ते हैं। तब नये-नये बिम्बों का सृजन होता है। जब जीवन की कटु और तीक्ष्ण अनुभूतियां इनके कवि को

---

१. 'भ्रमर' पृ० २६५

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बुरी तरह झकझोरती हैं, तो इनकी कविता का सृजन होता है। प्रकृति-चित्रण करते समय मानो इनका चित्रकार सजग होकर इनके कवि से मिलकर बड़े मोहक बिम्बों की रचना करने लग जाता है। 'सांझ के बादल' में इनकी चित्रोपमता का बिम्ब-विधान कितना अद्‌भुत है—

'जल्दी से
कंघी पर
जूड़े में चांद खोंस
उलझे बालों के गुच्छे लपेट
फेंक दिये खिड़की से जो काली रात ने।'[1]

गिरिजाकुमार माथुर ताजे सरस बिम्बों में अपने संवेदनशील मन की गहन तथा सरल अनुभूतियों को उतारने में पूर्णतया सफल हुए हैं। इनकी कविता में संगीत का स्वर है। इनकी बिम्ब-योजना में न तो क्लिष्टता है और न ही बौद्धिक तीक्ष्णता। इनकी कवि-प्रतिभा में मौलिकता तथा गहन अनुभूति है।

कवि माथुर जब हिन्दी में कविता लिखने लगे तो नयी काव्य-चेतना उभर रही थी। छायावाद की अमूर्त वायवी-चेतना के स्थान पर जीवन की मूर्त और मांसल अभिव्यक्ति को स्पष्ट करने के लिए नवीन काव्य-चेतना का विकास हो रहा था। इस विषय में कवि माथुर का प्रशंस्य योगदान रहा है। वस्तुतः अज्ञेय के बाद माथुर ही इस धारा के सफल कवि माने जाते हैं। इनके 'नाश और निर्माण' और 'मंजीर' नामक दो गीत-संग्रह इस बात के प्रमाण हैं। इनकी 'चन्दरिया' शीर्षक कविता में बिम्ब-योजना का एक उदाहरण इस प्रकार है—

'यह झकाझक रात
चांदनी उजली कि सूई में पिरो लो ताग।
चांदनी को दिन समझकर बोलते हैं काग।
हो रही ताज़ी सफेदी नये चूने से
पुत रहे हैं घर के द्वार
चांद पूरा साफ
आर्ट पेपर ज्यों कटा हो गोल।
चिकनी चमक का दल दार
यह नहीं चेहरा तुम्हारा
गोल पूनम-सा
मांसल चीकने तन का
क्योंकि यह तो सामने ही दिख रहा है।'[2]

जगदीश गुप्त के समान धर्मवीर भारती ने भी बिम्ब-विधान में चित्रकार की तूलिका से काम लिया है। 'नवम्बर की दोपहर' और 'सांझ का बादल' इस सन्दर्भ में सर्वोत्तम रचनायें गिनाई जा सकती हैं। 'सांझ के बादल' में तरल रंगीन बिम्ब का आयोजन बड़ा ही अनूठा है। नवीन कविता के सजाने-संवारने में इन्होंने कुछ ऐसे अछूते बिम्ब उतारें हैं जो भाव चित्रों को मूर्तिमान कर देते हैं। सांझ के बादल का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

---

१. 'भ्रमर', पृ० २५४
२. आधुनिक हिन्दी कविता, पृ० १३५

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"ये अनजान नदी की नावें
जादू के ये पाल
उड़ाती
आती मन्थर चाल
नीलम पर किरनों
की सांझी
एक न डोरी
एक न मांझी
फिर भी लाद निरन्तर लातीं
सेन्दूर और प्रवाल।"

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने व्यापक जीवन दर्शन और व्यापक आस्था के बिम्ब अपनी कविताओं में आयोजित किए हैं। पराजय तथा घुटन की तिक्त अनुभूतियों के आगे इनके कवि ने कभी घुटने नहीं टेके हैं। इसके विपरीत उनसे सचेत होकर सतत संघर्षशील रहता हुआ अपने लक्ष्य की ओर गतिशील होता चलता है। इनकी 'भोर' शीर्षक कविता में नये बिम्ब की रचना बड़ी अद्भुत है—

"सलमें सितारों की काम वाली
नीली मखमल का खोल चढ़ा
अम्बर का बड़ा सिन्दौरा उल्टा।
धरती पर
नदियों के जल में
गिरि तरु के शिखरों से ढर-ढरकर
सब सेन्दूर फैल गया।"

इनकी 'खाली समय में' कविता में बेकार और निकम्मे जीवन को दर्द के कारण व्यग्र मनःस्थिति का चित्रण किया गया है!

दुष्यन्त कुमार अपने कवि-हृदय में जागृत होती हुई सूक्ष्म अनुभूति को मूर्तरूप देने के लिए प्रकृति से अप्रस्तुत को लेकर नये बिम्बों का सृजन करते हैं। इनकी एक कविता के इस अंश से यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है—

"गाओ
कोई किनारे से लग जाए चेतना जग जाए।
अपने अस्तित्व की शुद्ध चेतना जग जाए।
जल में ऐसा उबाल लाओ।"

दुष्यन्त कुमार ने अपनी बिम्ब-रचना के लिए अनेक प्रतीक महाभारत से भी लिये हैं।

निश्चय ही बिम्ब-योजना से हिन्दी काव्य साहित्य में गतिशीलता तथा चमत्कार आ गया है। इस विषय में योगदान देने वाले कवियों ने निस्संदेह प्रशंस्य कार्य किया है। रीतिकाल में बेजान बनी कविता को जीवनी शक्ति प्रदान करने का जो स्तुत्य कार्य भारतेन्दु जी ने किया था वही कार्य प्रयोगवादी कवियों ने करके छायावाद के पंखों पर बेतहाशा उड़कर इस धरती से दूर जाती हुई कविता को पुनः इस धरा पर लाकर किया। वे इस पृथ्वी की छोटी से छोटी, भद्दी-भोण्डी, उपेक्षित तथा निकृष्ट वस्तु को भी अपनी कविता का उपजीव्य बनाकर उसे नये बिम्बों के सबल माध्यमों से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत ही नहीं कर रहे हैं वरन् उनके हृदयों पर इनकी गहरी छाप बिठाने का कार्य भी कर रहे हैं। □

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बारह छोटी कविताएं

प्रकृति दृश्य

□ सुरेश धींगड़ा

१
कटता पेड़
उठता मकान
बूढ़ा चौकीदार
गिरी धूप को ताकता
चुपचाप।

२
'धप् !'
टपका आम
पत्नी बोली,
'काश ! न टपका होता,
कितना भरा लगता पेड़ !'

३
बन्दर भागा, आहट हुई ?
तुम चले,
पत्ते खड़खड़ा उठे !

४
चिड़िया आई
मेज़ पर बिखरा चुग्गा चुगने लगी,
मैं बुत बना रहा।

५
हरी धरती
सुरमई आकाश
बादलों में बन गई खिड़की।

६
जंगल में मोर नाचा
हज़ारों हज़ार पलकें खुलीं
फिर मुंद गईं आनन्द से।

७
चीनी गुलाब पर
लिपटी चम्पा-लता
एक और बुद्ध जन्मा !

८
घाटी-नदी-पत्थर पर
बैठी छाया
चोटी चढ़ आये
प्रेमी को दे अलविदा
उतर गई धरा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

९

झाड़ी में छिपा
कठफोड़वा उड़ा
कैमरे से आंख चुरा ।

१०

राजपथ-किनारे खड़ा
कटा ठूंठ
समाधिस्थ योगी ।

११

जलती धरती
उठा बगूला
'सूरज को छू लूंगा', बोला ।

१२

'कुहुक ! कुहुक !'
अमराई से कोयल बोली,
'लौटोगे शहर !' □

जम्मू-कश्मीर के लेखकों की उर्दू साहित्य को देन

कोहरा और धूप

हिन्दी में पहली बार ग़ज़लें, नज़्में, कहानियां, एकांकी तथा अन्य

सम्पादक : रमेश मेहता

लगभग २०० पृष्ठों पर फैली महत्त्वपूर्ण सामग्री
केवल १२.५० रुपये में

□

जम्मू-कश्मीर कल्चरल अकादमी की उर्दू और हिन्दी जगत को एक अनुपम भेंट

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

प्रतिरोध का प्रतिबिंब

☐ अवतार कृष्ण राज़दान

वही अभिव्यक्ति, वही इज़हार—शब्दजाल का विस्तार ! नपे-तुले, मोतियों जैसे शब्दों के माध्यम से तुमको झुठला दिया, बे-नकाब कर दिया और बाद में कोसा यह कहकर कि तुमने मुझ पर ऐसी चोट क्यों की और मेरी गतिहीनता के अन्धकार को देखकर खुशियां क्यों मनायीं ?

मेरे भावों की इस अभिव्यक्ति से तुमको दुःख हुआ। दुःख हुआ; उस समय मुझे ऐसा ही लगा। तुमने मुझसे कहा था—कितने रंगों के कितनी ही गन्धों के, कितने ही फूल होते हैं बगीचे में ! सब देखने में अच्छे और सुगंधित लगते हैं। यों ही अच्छे लगते हैं। किन्तु कौन कह सकता है कि इन सबके खिलने की गति एक समान है। वास्तव में गति का संबंध न इनके अच्छे बीज से है और न इनको अच्छी उर्वरक डालने से। गति का संबंध है परोपकार से। इस जन्म में आकर कोई इसका फल पाता है। और गतिहीनता के अंधकार को कोई प्रकाश में बदल सकता है—संघर्ष से। माली इसके लिए उसकी हर समय सहायता करता है।

तुम्हारी इन बातों से मैं उस समय आश्वस्त हो गया था। उस समय तुम्हारी तरफ देखा भर था। तुम्हें प्रश्रय नहीं दिया था।

जीवन की उसी गतिहीनता में, इसको गतिमय करने की आशा में संघर्ष की कंटीली झाड़ियों से गुज़रकर मैं घर से बाहर निकल आया था उस दिन ! अपनी उस आशा पर ठंडा पानी डालने की इच्छा नहीं थी।

घर में असहाय था। किसी प्रकार की सहायता पाने की आशा में किसी के निकट आना चाहता था। आजकल भी मैंने इस तरह की निकटता को कायम रखा है। किन्तु उस समय की बात कुछ दूसरी थी। सब मेरी सहायता करना चाहते थे, ऐसे ही नहीं, मेरी योग्यता-विनिमय को देखकर। लेकिन··· लेकिन हां, मैं सब कुछ समझता था। उस वक्त एक माली बनकर तुमने मुझ जैसे गुलाब का सिंचन नहीं किया बल्कि मुझे रौंदा-मसला, मेरे हर उद्योग को विफल कर दिया।

मैंने तुमको कोई गाली नहीं दी। नाराज़ या आहत भी नहीं किया। केवल अपनी बात

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कहने के लिए नपे-तुले शब्दों को मोतियों की तरह माला में पिरोकर तुम्हारे पास भेज दिया। लेकिन इससे तुम हिले नहीं। मेरी पराजय हो गयी। मेरे मुंह से एकदम निकल गया--अब मैं इस शब्दजाल में नहीं फंसने का। तुम्हारे प्रति अपने प्रतिरोध को प्रतिबिंबित करने के लिए मेरे पास कई माध्यम हैं। मूर्तिकला अभी जीवित है। तुम्हारी सोच या बातों की प्रतिक्रिया से मैं चित्रांकन भी कर सकूंगा। ऐसी बात नहीं है। किन्तु उस समय मेरे पास कुछ शब्द ही रह गए थे और इन्हीं को साथ लेकर मैं घर से निकल आया था।

किन्तु मैं क्या करने घर से निकला था? पहले-पहल इसका पता किसी को नहीं चला। हां, मैं समाज-कल्याण विभाग में तुमसे मिला था। अपने अपंग-संसार में रहकर इसमें अपनी विवशताओं की ओर तुम्हारा ध्यान केन्द्रित किया। मेरी बातों को ध्यान से सुनकर उस समय तुम इसी निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि विभाग की तरफ से मेरी कुछ सहायता होनी चाहिए। विभाग के उच्चाधिकारी होने के नाते उस समय तुम मेरे लिए कुछ भी कर सकते थे। यह मैं नहीं मानता कि तुमने मेरे लिए कुछ नहीं किया। हां, सीने पर कुल्हाड़ी रखकर यह निर्देश दिया कि मैं विभाग के एक रिक्त स्थान पर बाबू के पद पर नियुक्ति स्वीकार कर लूं। इसी के साथ विभाग में इसकी घोषणा कर दी गयी। साथ ही इस छोटी-सी बात का खूब प्रचार-प्रसार किया गया। उस समय ऐसा लग रहा था कि तुम मेरे लिए भगवान् तुल्य हो। तुमने मुझ पर अहसान किया है तथा मेरे जीवन को एक नयी गति प्रदान करके गतिमय बना दिया। किन्तु आज मुझे तुमसे नफ़रत हो गयी है। सोचता हूं कि हमारे ही कल्याण का विभाग और इसी के अधिकारी हम पर अहसान कर रहे हैं। हमारी भलाई के नाम पर हमारा ही शोषण कर रहे हैं ये। आखिर यह कब तक होगा! नहीं और नहीं···!

किन्तु मैं भूखा नहीं मरना चाहता था। मैं किसी भी तरह अपने बदन के निर्जीव अंगों को कुछ हद तक गति में लाकर इस विभाग में काम करने लगा। यहां सम्मानपूर्वक कमाए गए पैसे से मैंने अपनी आर्थिक दशा सुधार ली और पहले-पहल तुम्हारी चमकती हुई आंखों और तुम्हारे चेहरे के भाव देखकर मुझे लगा था कि तुमने मेरे लिए बहुत कुछ किया है··· फिर भी मैंने तुमको प्रश्रय नहीं दिया। अपने प्रति हीनता की भावना से मैं कभी-कभी तुम्हारी मीठी-मीठी बातों से पिघला भी। पिघलना तो हर किसी के लिए स्वाभाविक है। तुम्हारे सामने बैठ कर मैं अपने मन को स्थिर न रख सका। तुम मेरी सहायता करते थे, मेरी सुविधाओं का ख्याल रखते थे। किन्तु इसके बदले में मैंने भी तुमको बहुत कुछ दिया, जिस पर तुमने उस समय कोई ध्यान नहीं दिया। पता नहीं क्यों? किन्तु आज सब कुछ जानता हूं। पहले जानता भी कैसे? तुमने ही विवश किया तो···?

तुम्हारे साथ अपने कार्यकाल के दौरान मैंने अपनी ओर से लाख कोशिश की कि तुम मुझे वह न समझो जो मैं इस समय हूं। मैं सिर्फ इतना ही चाहता था कि तुमने जैसे मैडम क्यूरी या हेलन कैलर को समझा है, उसी तरह मुझे भी समझो! तुम में दृष्टि है, इसलिए याचना कर रहा था।

तुम मेरी ओर देखते थे और मैं समझता था कि तुमने मेरी बातों को समझा है। लेकिन नहीं, तुम वैसे न थे। तुमने मुझसे छल किया और मेरी भावनाओं पर करारी चोटें कीं। और जब मेरी पदोन्नति का समय आया तो मुझे उसके लिए अयोग्य घोषित कर दिया। लोग कहते हैं कि मर्द जात हमेशा हिंसा में विश्वास करती है। किन्तु यह झूठ है। स्वयं को मिलने वाली चीज दूसरे को मिलते देख तो हिंसा भड़केगी ही। हाथ से रोटी छीन लेना खराब लगेगा ही,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मर्द को भी और औरत को भी। तिस पर भी तुम उस औरत को नाराज़ नहीं करना चाहते थे। मुझसे दस वर्ष जूनियर होते हुए भी तुमने उसको बिना संघर्ष की वेदी पर चढ़े 'हेड क्लर्क' के पद से सम्मानित किया। कहना नहीं चाहता था किन्तु तुमने ही मुझे कहने पर विवश किया है। 'हां, तुम उसको हमेशा अपने निकट पाते थे। बात-बात में हंसने वाली उसकी हंसी में तुम संगीत की सी लय महसूस करते थे। वह तो सुन्दर है ही किन्तु इतनी कम आयु में इतनी अधिक प्रवणता निःसंदेह तुम्हारे लिए प्रसंसनीय है। वह शोख है, चंचल है, इससे अधिक तुम्हारे विभाग में और क्या होना चाहिए। सबसे बड़ी बात तो यह कि वह चल-फिर सकती है और यह उसकी सबसे बड़ी योग्यता है, शायद?

तुमने उस दिन सच ही कहा था — कितने ही रंगों के, कितनी ही गंधों के, कितने ही फूल खिलते हैं बगीचे में। कुछ तो देखते ही अच्छे लगते हैं और कुछ यों ही अच्छे लगते हैं। और आज तो तुमने उसी एक फूल को गुलदस्ते में रखकर अपने विभाग में 'डेकोरेशन-पीस' के रूप में इस्तेमाल किया है। दरअसल तुमने इसकी गति को देखकर चुना है। नव-यौवना है न, इसी लिए। और तुम्हारे अनुसार गति का संबंध है न परोपकर्म से। पिछले जन्म के कर्मों का फल वह इस जन्म में चख रही है। उसे किसी चीज़ के लिए संघर्ष करने की कोई आवश्यकता नहीं। उसे तुम जैसे मेहरबानों की बदौलत हर समय सब कुछ मिल सकता है। सिर्फ जरूरत है तुमको इसके बात-बात पर हंसते रहने की और इसी के साथ अपनी मोतियों जैसी सफेद दंत-पंक्ति दिखाने की। वास्तव में उसकी हंसी एक छंद है, एक संगीत है। उसमें एक विशेष आकर्षण है और किसी भी योगी या संत को अपनी ओर खींच लेने की शक्ति है। क्या नहीं है इसमें और क्या है, यह सब तुम मुझसे बेहतर जानते हो।

मैं भी कभी-कभी इस चटकीली औरत के पास बैठता था। कल तक वह मेरे कहने पर नाचती थी किन्तु आज मुझे मजबूर होकर उसके आदेशों का पालन करना पड़ रहा है। मेरे लिए यह सब असह्य है। मेरे पागल मन ने इसको यहां से हटाने की योजना बनायी किन्तु इसको कार्यान्वित करने के लिए बल और गति की आवश्यकता होती है। मेरी योजना विफल रही।

उसने मेरे प्राप्य को नाज़-नखरा दिखाने की योग्यता से, मेरी आंखों के सामने अपने अधिकार में कर लिया, फिर भी मुझे कोई दुख नहीं। वह भी तो मेरे ही आफिस में काम करती थी। मुझे मेरी पदोन्नति का सम्मान नहीं मिला तो क्या हुआ। यह गर्व की बात नहीं है मेरे लिए कि नव-युवकों की बेकारी के इस अंधियारे युग में एक स्वस्थ एवं सुन्दर नव-यौवना को किसी-न-किसी तरीके से यह पद-भार मिला और वह इसको उठाने में पूरी लगन दिखाकर अपनी आंखों में अपना कोई अलग संसार बनाने की कल्पना कर रही है। क्या पता, मैं इस संसार में खो जाता क्योंकि इसका विस्तार असीम है और इसकी हर दिशा तक पहुंचने के लिए गतिशील होना जरूरी है। मेरा भी अपना एक अलग संसार है किन्तु वह सीमित है। अपंग संसार···इन्सान के लिए एक नरक है। इसमें वह अन्दर से ही घुटता है और घुट-घुटकर मर जाता है। किन्तु उसके लिए इस संसार में कलाकार होना एक महान वैशिष्ट्य है। मैं भी कलाकार के नाम पर एक लेखक हूं और तुम्हारे साथ अपने कार्य-काल के बीच अपने लेखन द्वारा इस अत्याचार के विरुद्ध कई बार आवाज उठा चुका हूं। सुना था कि कलम की नोक तलवार की धार से भी तेज़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होती है। किन्तु आजकल यह बात वास्तविक नहीं लगती। कलम की नोक मकड़े की तरह शब्दजाल बुन सकती है लेकिन···लेकिन मैं अब अपने इस छोटे किन्तु अलग संसार में कला का एक नया माध्यम अपनाना चाहता हूं। मैं शेरगिल, पिकासो या हुसैन तो नहीं किन्तु बनना जरूर चाहता हूं ताकि संसार में हुए हर एक अत्याचार के प्रतिरोध में बारीक से बारीक रेखाओं के माध्यम से खड़ा हो सकूं। कौन जाने इसी से मुझे इस कला के अस्तित्व में समाहृत भावपूर्ण तन्मयता मिले और मेरे प्रतिरोध का प्रतिबिंब वह लोग देख पाएं जिनके पास आंख हो। □

हमारा साहित्य

का

१९८३ का अंक

पिछले पच्चीस वर्षों में जम्मू-कश्मीर में

लिखी गई

श्रेष्ठ हिन्दी कहानियों/कविताओं का प्रतिनिधि संकलन है

□

अपनी प्रति मंगवाना न भूलें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संघर्ष-चेतना के रू-ब-रू

☐ डॉ० अनिल गोयल

उर्फ सैम मृदुला गर्ग की कहानियों का नया व सशक्त कहानी संग्रह है। संग्रह में संकलित बारह कहानियां विषयगत विविधता व आडम्बरहीन शैली के कारण जीवन्त व प्रामाणिक होने का संकेत देती हैं। कहानियों में लेखिका ने जिन कथास्थितियों का चुनाव किया है वे मानव स्वभाव की पर्तों तथा अंतर्विरोधों को परिवेश की सापेक्षता के संदर्भ में प्रस्तुत करती हैं। संग्रह की सबसे सशक्त कहानी 'उर्फ सैम' है जो भारतीय व अमरीकी परिवेश की तुलना करती हुई भारतीय संस्कृति के महत्त्व को ही उजागर नहीं करती बल्कि पश्चिम का अंधानुकरण करने वाले व्यक्ति के बौने व्यक्तित्व का खाका भी खींचती है। सावन प्रताप सिंह 'उर्फ सैम' अमरीका में रहता है। वह अक्सर महसूसता है कि जितना ही अमरीकी लोग हिंदोस्तानियों को बौना बनाती नज़रों से देखते हैं, भारतीय उतना ही अमरीका के वातावरण और वहां की चीज़ों को पसन्द करते हैं। सबसे अधिक समस्या तो अमरीका में बसे भारतीय के लिए तब उत्पन्न होती है जब उसे 'ओल्ड होम' में बुढ़ापे की ज़िन्दगी काटनी होती है, भले ही वहां के लोग 'ओल्ड होम' को 'सीनियर सिटिज़ंस रिज़ॉर्ट' कहकर पुकारें। ऐसे मौके पर वह अमरीकी नकाब उतार कर पुनः हिंदोस्तानी बनकर हिंदुस्तान में अपनी जड़ें तलाशने लगता है।

पति-पत्नी के मध्य व्याप्त तनाव को मृदुला ने 'वितृष्णा' नाम दिया है। इस वितृष्णा का कारण कुछ भी हो सकता है। हां, मृदुला ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि इस उम्र में इस वितृष्णा को चाहे-अनचाहे ढोने के सिवा कोई चारा नहीं है, यही कारण है कि शालिनी दिनेश को आज भी आदर्श पत्नी की नाईं सभी सुविधाएं मुहैय्या कर रही है जैसे खाने की मेज पर करीने से उसकी पसन्द का खाना लगा देना, बिस्तर के पास डिबिया में सौंफ-इलायची रख देना लेकिन दिनेश से न उसने कभी बात की है, न उसकी ओर नजर उठाकर देखा है—"दिनेश सामने रहता है तो शालिनी का चेहरा, चेहरा नहीं रहता, पीठ बन जाता है।" 'बांसफल' दादा दादी के लाड़-प्यार तले पोते-पोती में अनुशासनहीन होने की स्थिति को दोहराने वाली कहानी है। इसी श्रेणी में 'जिजीविषा' कहानी का नाम भी लिया जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि भारतीय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समाज में पति की नियति स्वच्छन्द है, वह स्वतंत्र रूप से जीवन जीता है, पत्नी एक गुलाम की तरह उसके इधर-उधर मंडराती रहती है तथा हुक्म बजा लाती है और पति के बीमार पड़ जाने की स्थिति में वह जिजीविषा भोगती है। यह जिजीविषा वह उस वैधव्य से बचने के लिए भोगती है जिसका मतलब है – न होना।

'उधार की हवा', 'चौथा प्राणी' व 'मिजाज़' व्यक्ति-चेतना पर आश्रित कहानियां हैं। 'उधार की हवा' में द्रष्टव्य है कि बुढ़ापा व्यक्ति को ऐसे कगार पर ला देता है जहां उसकी स्वतंत्रता छिन जाती है। बच्चे कितना भी ध्यान रखें, सेवाभावी हों लेकिन बूढ़ा व्यक्ति अपने में निश्चेष्ट नहीं हो पाता और उसके बीमार हो जाने पर स्थिति इतनी विकट हो जाती है कि वह पारिवारिक सदस्यों को ही नहीं बल्कि रोग की शिनाख्त करने वाले डॉक्टर व अस्पताली व्यवस्था को भी कोसने लगता है "अस्पताल वालों का क्या है, उन्हें तो पैसा बनाना है। मरीज तो ऐसे हैं जैसे जाल में फंसी मछली वह भी वरदान देने वाली मछली।" 'चौथा प्राणी' में युवक बीरेन की मानसिक उथल-पुथल लक्षित होती है जो घर वालों से अलग व्यक्तित्व की स्थापना करके व्यर्थ के संबोधनों जैसे 'महामहिम वीरेन्द्रनाथ सरकार' की जटिलता से मुक्त होना चाहता है। 'मिजाज़' में आधुनिक सभ्यता के खोखलेपन का अध्ययन नारी पात्रों के माध्यम से करवाया है। श्वेता जो मां की तरह मिजाज़ की कायल है, वह मात्र हाव-भाव में दक्ष हो पायी है, ज़िन्दगी में किसी निर्णय को स्थापित कर पाने में प्रायः असमर्थ है। पति मानस द्वारा नौकरी छुड़वाये जाने के निर्णय पर श्वेता तर्क नहीं कर पाती। और इसी संदर्भ में मां के मिजाज़ का खोखलापन भी चित्रित होता है— श्रीमती इन्दिरा गांधी की हत्या के प्रसंग को लेकर लिखी गई कहानी है 'अगली सुबह'। लेखिका का मत है कि एक मछली सारे तालाब को गंदा करती है, उसी तरह दो सिक्ख गोली-मारकों के कारण सारी सिक्ख जाति कलंकित हो गई। दूसरी ओर प्रिय नेता के मारे जाने के कारण भीड़ का आदमी आदमी नहीं रहा।

रूसी साम्यवाद से प्रभावित लेखिका की कहानियों में प्रायः ऐसे पात्र विद्यमान रहते हैं जो पूंजीवाद के विरोधी हैं। 'विनाशदूत' कहानी में इस सत्य को उद्घाटित किया गया है कि पूंजीपति अपने को सर्वेसर्वा घोषित करता है और पूंजी के नशे में प्रकृति से भी युद्ध छेड़ बैठता है और यह युद्ध उसके अंत का कारण भी सिद्ध हो सकता है। 'बेनकाब' में लेखिका का कहना है कि पूंजीवादी समाज ही आदमी को डाकू व बागी बनाता है। इसमें डाकू पात्र के विरोधी स्वर इस प्रकार गुंजायमान होते हैं "कायर बनने से कहीं अच्छा है अपराधी बन जाना। खुले-आम बलवा कर देना। बेपर्दा कत्ल करना।" कहानियों में ऐसे पात्र भी मिलते हैं जो बागी व डाकू नहीं बन पाते, ऐसे पात्र कुंठित होकर ज़िन्दगी को 'नकार' मानने लगते हैं। श्रमिक वर्ग की पारिवारिक स्थिति को आधार बनाकर लिखी गई कहानी है "नहीं"। जहां बच्चे भी अपने बाप-दादा की तरह स्टेशन पर बोतलें खोलने का काम छुटपन से ही सीखने लगते हैं। मृदुला ने बच्चे खेमू की मनोवैज्ञानिक स्थितियों का निरीक्षण विवरणात्मक शैली में किया है और उसके स्वाभिमान को 'नहीं' शब्द द्वारा कायम रखा है।

कुल मिलाकर संग्रह की कहानियां समाज और परिवेश की विसंगतियों पर वक्तव्य देकर खामोश नहीं हो जातीं बल्कि हमें आने वाले संघर्षों से रू-ब-रू करती है। □

चर्चित कृतिः उर्फ सैम (कहानी-संग्रह)/मृदुला गर्ग/ प्रकाशकः राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली/ प्र० सं० १९८६/मूल्य : २८.०० रुपये/ पृष्ठ : १२०

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सांस्कृतिक समाचार

'हिंदी हम सबकी है'

□ पी० वी० नरसिंह राव

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था—"राष्ट्रभाषा के अभाव में—राष्ट्र गूंगा है।" संभवत: इसी अभाव की पूर्ति के लिए स्वतंत्रता के बाद हिंदी को 'संघ की राजभाषा' का दर्जा दिया गया और मार्च १९६० में मंत्रालय के अधीन केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना की गई।

आज केन्द्रीय हिंदी निदेशालय मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन कार्यरत है और अपने जीवन के २५ वर्ष पूरे करके पूर्ण युवावस्था में प्रवेश कर चुका है। निदेशालय की रजत जयंती के उपलक्ष्य में २२-२३ अगस्त को नई दिल्ली में एक समारोह का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन मानव संसाधन विकास मंत्री श्री पी० वी० नरसिंह राव ने किया। इस अवसर पर महात्मा गांधी का अनुसरण करते हुए श्री राव ने भी घोषणा की—"हिंदी हम सबकी है। इसकी जिम्मेदारी केवल केन्द्र या हिंदी भाषी राज्यों की ही नहीं है, बल्कि गैर-हिंदी भाषी राज्यों की भी है।"

श्री राव ने निदेशालय द्वारा प्रकाशित हिंदी-गुजराती-अंग्रेजी, हिंदी-कन्नड़-अंग्रेजी तथा हिंदी-तमिल-अंग्रेजी के त्रिभाषा कोशों, 'भारतीय कविता' और 'केन्द्रीय हिंदी निदेशालय : इतिहास के दर्पण में' ग्रन्थों का विमोचन किया। उन्होंने १५ हिंदीतर भाषी साहित्यकारों को उनकी हिंदी में लिखी श्रेष्ठ कृतियों के लिए पुरस्कार भी दिए। पुरस्कृत लेखकों में डॉ० अजय कुमार पटनायक (उड़िया), डॉ० इम्मानुएल ई० जेम्स (कन्नड़), डॉ० शशि शेखर तोषखानी (कश्मीरी), डॉ० पारुकांत देसाई (गुजराती), डॉ० ओमप्रकाश गुप्त (डोगरी), डॉ० बलदेव राज गुप्ता (डोगरी), डॉ० विश्वनाथ अय्यर (तमिल), श्रीमती सरस्वती रमानाथ (तमिल), कु० भास्करम यज्ञेश्वर ललितांबा (तेलुगु), सुरेश चन्द्र वात्स्यायन (पंजाबी), सुरेश सेठ (पंजाबी), सदानंद महादेव पेठे (मराठी), श्रीमती नाला सत्यनारायण (मराठी), के० गोपीनाथ (मलयालम) तथा डॉ० जी० गोपीनाथ (मलयालम) शामिल हैं।

समारोह के उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता भूतपूर्व सांसद श्री सुधाकर पांडेय ने की।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निदेशालय के निदेशक श्री राजमणि तिवारी ने सभी अतिथियों का स्वागत करते हुए निदेशालय की गतिविधियों के बारे में जानकारी दी। समारोह के आरम्भ में 'संस्कृत विद्यापीठ' और 'स्वरांजलि' की ओर से सरस गीत प्रस्तुत किए गए, जिनमें 'हिंदी भारत भू का अभिनंदन है' गीत विशेष पसन्द किया गया।

उद्घाटन सत्र के बाद २२ अगस्त को और २३ अगस्त को तीन गोष्ठियों का आयोजन किया गया, जिनमें हिंदी के प्रचार-प्रसार और विकास से संबंधित विषयों पर विचार-विमर्श किया गया। इनमें भारतीय भाषाओं और वाङ्मय के संदर्भ में निदेशालय की भूमिका, उसकी उपलब्धियों और सीमाओं पर भी चर्चा की गई। इन गोष्ठियों में देश के कोने-कोने से आमंत्रित विद्वानों, साहित्यकारों, प्राध्यापकों और पत्रकारों आदि ने भी भाग लिया। चर्चा के दौरान कई उपयोगी सुझाव सामने आए, जिन पर आगे कार्रवाई अपेक्षित है।

प्रस्तुति : देश कुमारी

आठवां दशक : सृजन के संदर्भ

(जम्मू-कश्मीर से हिन्दी कहानियां, कविताएं, नाटक)

☐

सम्पादक : रमेश मेहता

☐

सम्पर्क : जे० एण्ड के० अकादमी आफ आर्ट,

कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़ जम्मू

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

द्विमासिक **शीराज़ा** हिन्दी

81

वर्ष २२ / अंक ३

(अगस्त-सितम्बर १९८६)

नवम्बर, १९८६ में प्रकाशित

•

प्रमुख सम्पादक

मुहम्मद यूसुफ़ टेंग

•

सम्पादक

रमेश मेहता

•

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार

सम्पादक

शीराज़ा हिन्दी

जे० एण्ड के० अकादमी आफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज, नहर मार्ग, जम्मू।

फोन : ५०४०

•

मुद्रक :

रूपाभ प्रिंटर्स

शाहदरा, दिल्ली-३२

•

यह अंक : दो रुपये

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

अनुक्रम

लेख

आधुनिकता का समावेशी चरित्र : शमशेर का काव्य	धनंजय वर्मा	१
अनुभव और सम्प्रेषण के बीच आध्यात्मिक सेतु : एक दृष्टि	रतनलाल शांत	२३
कश्मीर की कांस्य-मूर्तियां	मोतीलाल साकी	३७
मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में राष्ट्रीय भावना	डॉ० विद्यानाथ गुप्त	६०
आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब योजना	डॉ० सत्यपाल श्रीवत्स	६५

कविताएं

गलतफहमी/पीड़ा	अजित कुमार	२१
क्या उत्तर दूं/रास्ता-१/रास्ता-२ षड्यन्त्र/मेरा दिन/उनके नाम	पृथ्वीनाथ 'मधुप'	४२
चिनार/मुर्गी-घोड़ा सम्वाद	महाराज कृष्ण संतोषी	४५
प्रकृति दृश्य (बारह छोटी कविताएं)	सुरेश धींगड़ा	७१

हास्य-व्यंग्य

पत्र-मित्र	रवीन्द्रनाथ त्यागी	३४

कहानियां

मेरी मां कहा करती थी···	चन्द्रकांता	२६
सपन राग (उपन्यास-अंश)	राकेश वत्स	४९
प्रतिरोध का प्रतिबिम्ब	अवतार कृष्ण राज़दान	७३

स्थायी स्तम्भ

पुस्तकें और पुस्तकें		
संघर्ष-चेतना के रू-ब-रू	अनिल गोयल	७७
सांस्कृतिक समाचार		[illegible]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant